“अविश्वसनीय। सुपर 30 विश्व के चार सर्वाधिक इनोवेटिव स्कूलों में से एक।”
—न्यूजवीक

सुपर 30 आनंद

की संघर्ष–गाथा

(हजारों सपने, एक आनंद)

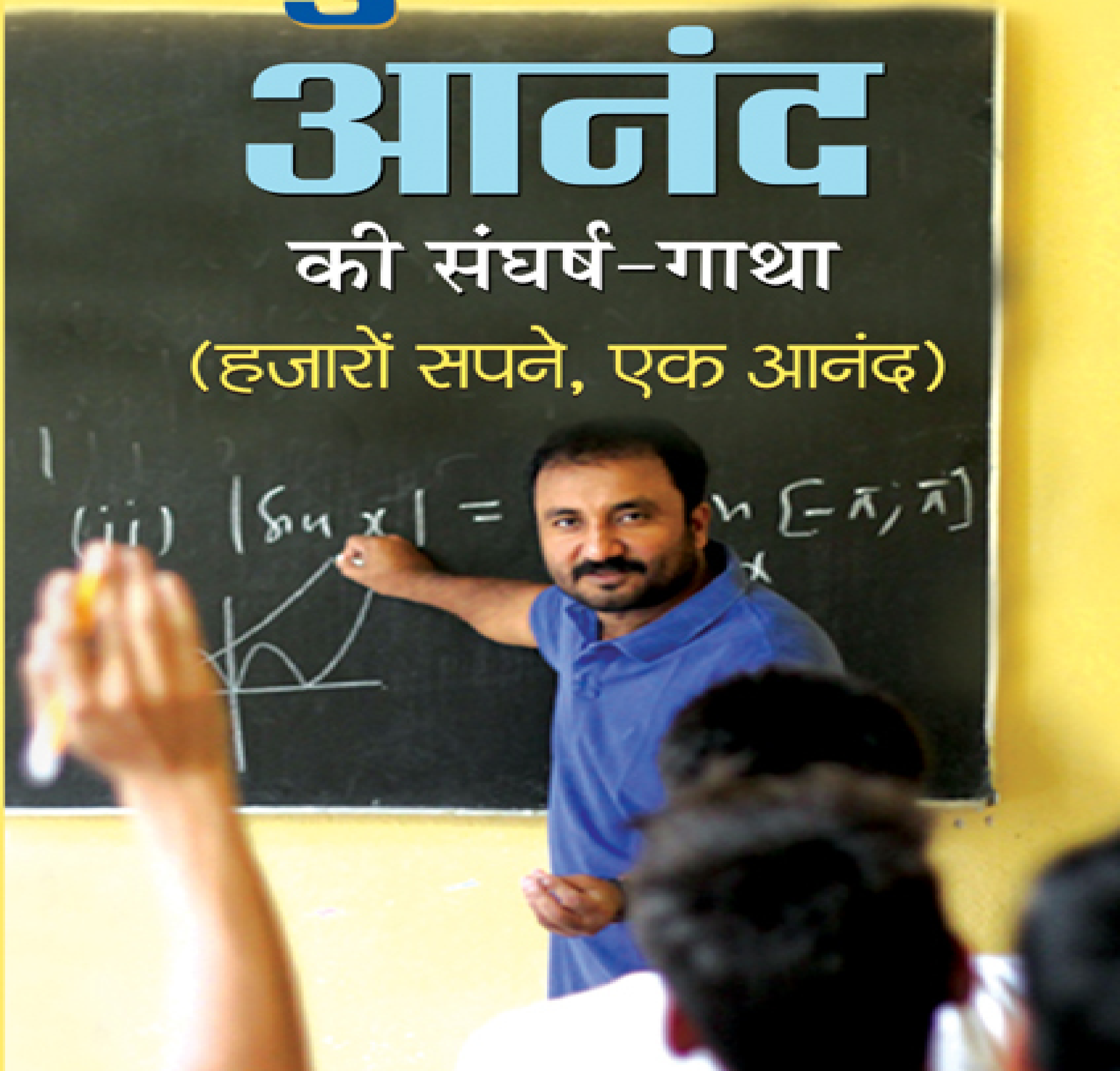

सुपर 30 आनंद

की

संघर्ष-गाथा

(हजारों सपने, एक आनंद)

आनंद कुमार

प्रभात प्रकाशन, दिल्ली
ISO 9001:2008 प्रकाशक

इस पुस्तक का पूरा लाभांश

सुपर 30 के विस्तार के लिए उपयोग किया जाएगा

लेखकीय

पटना, (बिहार) में 30 मई, 2008 की सुबह बहुत साफ और चमकीली थी। बरतनों की आवाजें आ रही थीं और बच्चों को बिस्तर से उठकर स्कूल यूनीफार्म पहनने के लिए राजी किया जा रहा था। अभी सुबह हुई ही थी, लेकिन चाँदपुर बेला की बस्ती में हलचल शुरू हो गई थी। लोग बस्ती के एक घर की ओर खिंचे जा रहे थे, शांति कुटीर उस घर के बाहर एक भीड़ इकट्ठा थी और यदि आप और आगे जाकर देखते तो आपको कमीज पहने एक युवा सा प्रतीत होने वाला व्यक्ति दिखाई दे जाता, जो इस पूरी हलचल का केंद्र लग रहा था।

आनंद कुमार कई लोगों से एक साथ बात करने का प्रयास कर रहे थे, उनके प्रश्नों के उत्तर दे रहे थे, उनकी शुभकामनाएँ स्वीकार कर रहे थे, और अपनी चिंता तथा बेचैनी छुपाने की पूरी कोशिश कर रहे थे। उन्होंने पिछले साल 30 छात्रों को आई.आई.टी. जे.ई.ई. की प्रवेश परीक्षा के लिए कोचिंग दी थी और आज परिणाम का दिन था। यह रिजल्ट का समय था, सभी 30 छात्रों ने रात आनंद कुमार के घर पर बिताई थी और बेचैनी के कारण किसी को नींद नहीं आई थी। आनंद साल-दर-साल इन पलों को जीते आ रहे थे, फिर भी उनकी उत्सुकता तब तक शांत नहीं होती, जब तक वे प्रत्येक छात्र का परिणाम देख नहीं लेते। 6 बजे तक सबने सोए होने का ढोंग करना छोड़ दिया और तैयार होने लगे। आनंद की माँ जयंती देवी ने चाय बनाई और कुछ ही देर में कुमार परिवार के साधारण से घर में आनेवाले लोगों की गहमागहमी शुरू हो गई।

सुबह के 6.30-7.00 बजते-बजते पत्रकार भी आने लगे। आनंद ने पहले आए कुछ पत्रकारों को समझाने का प्रयास किया कि रिजल्ट 9 बजे के पहले नहीं आनेवाले, लेकिन जल्दी ही उन्होंने यह प्रयास करना छोड़ दिया, जब उन्होंने देखा कि वे परिणाम घोषित होने के पहले वाले मूड को भी कैद करना चाहते हैं।

2008 तक सुपर 30 एक जाना-सुना नाम बन चुका था। 'पीपुल' पत्रिका ने आनंद कुमार को एक नायक का दर्जा दे दिया था और 'न्यूजवीक' पत्रिका ने उनकी अनूठी पहल 'सुपर 30' को विश्व के चार सबसे इनोवेटिव स्कूलों में से एक घोषित किया था। अपेक्षाएँ आकाश छू रही थीं, क्योंकि पिछले वर्ष 2007 में उनके 28 छात्रों ने प्रतिष्ठित आई.आई.टी. जे.ई.ई. की प्रवेश परीक्षा में सफलता प्राप्त की थी। आनंद पत्रकारों के फोन लेते रहते थे, जो पिछले कुछ वर्षों में सुपर 30 की प्रसिद्धि फैलने के साथ उनके काफी करीब आ गए थे। आशा करता हूँ कि परिणाम निराश नहीं करेंगे, घड़ी की सुई के नौ के निकट आते-आते आनंद की उत्सुकता और भी बढ़ जाती है। लेकिन बाहर से देखने पर वे शांत और आश्वस्त नजर आते हैं—छात्रों को आश्वस्त करते हुए, मीडिया को सम्मोहित करते हुए!

पौने नौ के करीब आनंद रोल नंबरों की एक सूची हाथ में लेकर कंप्यूटर स्क्रीन के सामने बैठ गए। छात्र उनके पास आकर खड़े हो गए और अधिक-से-अधिक लोग उस तंग कमरे में समाने की कोशिश करने लगे। 9 बजकर एक मिनट पर राकेश कुमार के चयन की सूचना मिल गई! खुशी की एक जयकार हुई और राकेश कुमार की पीठ थपथपाई जाने लगी। एक पत्रकार चुपके से उसे बाहर ले जाने की कोशिश करने लगा, ताकि उसका इंटरव्यू ले सके। आनंद कुमार के पास अभी भी 29 नाम थे, जिनके परिणाम उन्हें जानने थे उन्होंने अगला रोल नंबर डाला तो सब साँस रोककर इंतजार करने लगे, लेकिन कुछ नहीं हुआ, सर्वर जाम हो गया था। लाखों उम्मीदवार एक साथ अपने स्कोर जानने का प्रयास कर रहे थे। कुछ मिनट बाद जय राम की सफलता सामने आई! और अब अठारह में से अठारह का स्कोर हो चुका था, आनंद पसीने से नहा गए थे, लेकिन उनके होंठों पर हल्की सी मुसकान थी। वे एक के बाद एक परिणाम देखते रहे, कभी-कभी परिणाम अचानक सामने आ जाता और जोरदार तालियाँ शुरू हो जातीं, और कभी-कभी किसी पेज पर एरर आ जाता। लगभग डेढ़ घंटे बाद कंप्यूटर के सामने सहाय आनंद और रंजन कुमार बचे थे। चिंता मत करिए, सब अच्छा होगा, आनंद ने रंजन से कहा, जिसका चेहरा सफेद हो गया था। वह उत्तीर्ण हो चुका था, वह आनंद से लिपटकर हँसने लगा, फिर रोने लगा, और फिर जीत की खुशी में चिल्लाने लगा।

आनंद को कंधों पर उठा लिया गया, उनके मुँह में लड्डू डाले जाने लगे, फ्लैश बल्ब चमकने लगे, अगली सुबह के अखबारों की सुर्खियाँ लिखी जाने लगीं, और ‘आनंद सर जिंदाबाद’ के नारे गूँजने लगे। दीपू कुमार के पिता इस मौके पर उनके साथ रहने के लिए सुपौल से आए थे, वे इतने भावविभोर हो गए थे कि एक कोने में अकेले खड़े होकर रोने लगे। आनंद सहाय की माँ जयंती देवी के साथ बैठकर पूरियाँ और जलेबियाँ बना रही थीं। पत्रकार अधिक-से-अधिक छात्रों से बात करने का प्रयास कर रहे थे। यह सब सच था, आनंद विश्वास नहीं कर पा रहे थे। अपने छात्रों के चमकते, उल्लसित चेहरों को देखकर उन्हें इतनी खुशी महसूस हो रही थी कि उसके अतिरेक से उनकी आँखों में आँसू आ गए। इतिहास रचा जा चुका था; सुपर 30 ने शत प्रतिशत परिणाम हासिल किया था।

1

एक हीरो का स्वागत

30 सितंबर, 2014 एम.आई.टी. मीडिया लैब

आनंद कुमार साधारण सी कमीज और घिसी हुई पतलून में मंच पर खड़े थे। वे बेचैन, लेकिन आत्मविश्वास से भरपूर थे। उनके होंठों पर एक हल्की सी मुसकान खेल रही थी। एक ऐसी मुसकान, जिसमें विस्मय और अविश्वास झलक रहा था। वे अवास्तविकता की एक अजीब सी भावना महसूस कर रहे थे। वे अपनी कल्पना में सबसे सम्मानित और गरिमापूर्ण लोगों के समूह के सामने खड़े थे—बोस्टन के मैसाचुसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी (एम.आई.टी.) के छात्रों और प्रोफेसरों के सामने और अपने अनूठे स्कूल सुपर 30 के विषय में एक व्याख्यान देने की तैयारी कर रहे थे। इस दुनिया के तरीके भी अजीब हैं। आनंद सोच रहे थे, कुछ ही समय पहले मैं अपनी साइकिल पर आस-पड़ोस की गलियों के चक्कर लगाते हुए पापड़ बेच रहा था और कैंब्रिज में पढ़ने के अपने टूटे हुए सपने को भूलने की कोशिश कर रहा था—और आज मैं यहाँ खड़ा हूँ।

उन्होंने अपना सिर हिलाया और बोलना शुरू किया, ''मुझे यह मंच और आप सबके सामने बोलने का अवसर देने के लिए धन्यवाद। मेरे लिए विश्वास करना मुश्किल है कि मुझे दुनिया के शीर्ष संस्थानों में से एक में बोलने के लिए आमंत्रित किया गया है। इस संस्थान एम.आई.टी. में उच्च शिक्षा प्राप्त करना कई लोगों का सपना है, और आज मुझे यहाँ आने का अवसर मिला है।

''मैं बिहार से आया हूँ, भारत का वह राज्य, जो नालंदा और विक्रमशिला विश्वविद्यालय जैसे संस्थानों के साथ शिक्षा के क्षेत्र में अपनी गौरवशाली परंपराओं के लिए जाना जाता था। आज दुनिया में बहुत से लोग बिहार के बारे में यह जानते हैं कि धीरे-धीरे बिहार का पतन हो गया और बिहार की लगभग 40 प्रतिशत जनसंख्या लिख-पढ़ नहीं सकती, लेकिन अब धीरे-धीरे बिहार का चेहरा बदलने लगा है।

''मैं यहाँ आपको कुछ नया बताने नहीं आया हूँ। मैं सिर्फ इतना कहना चाहता हूँ कि शिक्षा अभी भी दुनिया की अधिकांश समस्याओं से निपटने का सबसे शक्तिशाली हथियार है, क्योंकि अधिकांश समस्याओं की उत्पत्ति गरीबी और अज्ञानता से होती है। सुपर 30 इसका उन्मूलन करने की दिशा में एक कदम है और मैं उम्मीद के साथ शुरुआत कर रहा हूँ; इस

उम्मीद के साथ कि तूफान चाहे कितना भी विनाशक हो, एक चतुर नाविक के धैर्य और मार्गदर्शन के सहारे जहाज उसमें से सुरक्षित बाहर आ सकता है।

''इस लड़के की कल्पना कीजिए। संतोष, बिहार की राजधानी पटना से 40 किलोमीटर दूर एक गाँव के एक अत्यधिक गरीब परिवार का लड़का। वो राजमार्ग के पास अपने माता-पिता के साथ रहता था और उसके परिवार का गुजारा सब्जियाँ बेचकर होता था। संतोष एक बहुत ही मामूली सरकारी स्कूल में जाता था और शाम को वह सब्जी के ठेले पर अपने पिता की मदद करता था।

''संतोष शिक्षा की ताकत को समझता था और उसके माता-पिता भी शिक्षा के महत्त्व को समझते थे। उसने दसवीं तक की पढ़ाई पूरी कर ली; लेकिन वह नहीं जानता था कि आगे क्या करना है। वह गणित में अच्छा था, इसलिए आसपास के सभी लोगों ने उसे आई.आई.टी. की तैयारी करने की सलाह दी और उसने पटना जाने का फैसला कर लिया। फिर उसे एहसास हुआ कि पटना में कोचिंग लेना बहुत महँगा था और वह किसी भी सूरत में वहाँ कोचिंग नहीं ले सकता था। वहीं उसे सुपर 30 के बारे में पता चला। उसने प्रवेश परीक्षा दी और उसका चयन हो गया। उसे आई.आई.टी. खड़गपुर में दाखिला मिल गया। सड़क के किनारे सब्जी बेचनेवाले से यूरोप में शोध छात्र तक की संतोष की यात्रा ने भारत के अलावा जापान, जर्मनी और अमेरिका के मीडिया का भी ध्यान आकर्षित किया। यहाँ तक कि उस पर एक वृत्तचित्र भी बना, जिसमें दिखाया गया था कि कैसे बगैर किसी सुविधाओं के और कभी-कभी बगैर भोजन के एक लालटेन की रोशनी में पढ़ाई करके वह इतनी ऊँचाई तक पहुँचा था। आज वह यूरोप की एक प्रतिष्ठित यूनिवर्सिटी में है।

''अब मैं आपको अनूप के बारे में बताता हूँ। अनूप बिहार के एक दूर-दराज के गाँव छेंव में रहता था, जहाँ नक्सलियों का प्रकोप है। अनूप के परिवार को पेट भरने के लिए संघर्ष करना पड़ता था। एक रात आठ वर्ष का अनूप भूख से रो रहा था। उसकी माँ ने उसके पिता से विनती की कि वे बाहर जाकर किसी से थोड़ा चावल माँग लाएँ, ताकि वे उसे उबालकर नमक के साथ सबको खिला सकें। लेकिन पानी तब तक उबलता रहा, जब तक कि बरतन में एक बूँद भी नहीं बचा। अनूप के पिता फिर कभी लौटकर नहीं आए। कुछ लोग कहते हैं कि उन्हें नक्सलियों ने पकड़ लिया था। गाँववाले कई दिनों तक उन्हें ढूँढ़ते रहे, लेकिन उनका कुछ पता नहीं चला। अनूप बड़ा हो गया। जिस घोर गरीबी से वो घिरा हुआ था, उससे पहले दुखी और फिर नाराज वह देश में गरीबों और अमीरों के बीच मौजूद विशाल खाई से निराश हो गया था। वह नक्सलियों के तरीकों से आकर्षित होकर बदला लेने के उपाय तलाशने लगा। लेकिन उसकी माँ जानती थी कि सबसे शक्तिशाली हथियार एक ही था—शिक्षा। उसने कड़ी मेहनत की और अनूप को स्कूल भेजा। अनूप ने दसवीं में बहुत अच्छे अंक प्राप्त किए और आगे की पढ़ाई के बारे में जानकारी प्राप्त करने पटना आया। वह पटना में मुख्यमंत्री श्री नीतीश कुमार के घर पर जनता दरबार में पहुँचे।

मुख्यमंत्रीजी से मिलने के पहले ही एक अधिकारी ने अनूप की समस्या सुनी और उस युवा लड़के की बेबसी देखकर उन्होंने सुपर 30 के बारे में बताते हुए मुझसे मिलने का सुझाव दिया। उन्हें यह बताया गया था कि आनंद कुमार किसी से कोई फीस नहीं लेते बल्कि विद्यार्थियों को रहने-खाने की भी सुविधा निःशुल्क प्रदान करते हैं। मुझे उस अधिकारी का नाम तो पता नहीं है, लेकिन मैं उनका शुक्रगुजार हूँ कि अनूप जैसे होनहार बच्चे को बड़े प्रेम और शांति से उचित सलाह दी।

''जब मैंने पहली बार अनूप और उसकी माँ को देखा तो वे नंगे पाँव और पसीने से लथपथ थे, लेकिन उनकी आँखों में एक चमक थी। अनूप ने दो वर्ष कड़ी मेहनत की और आज वह आई.आई.टी. मुंबई में अपने तीसरे वर्ष में है।''

हर कहानी के बाद और आनंद कुमार के पीछे की स्क्रीन पर साथ-साथ चल रही छवियों को देखने के बाद दर्शक चकित हो जाते और कुछ तो तालियाँ भी बजाने लगते, बगैर इस बात का एहसास किए कि वे एक व्याख्यान के बीच में तालियाँ बजा रहे थे।

आनंद ने उन्हें अनूप और संतोष जैसे कुछ और छात्रों की कहानियाँ भी सुनाईं। उन्होंने दर्शकों को अनुपम के बारे में बताया, जिसके पिता एक ऑटोरिक्शा चलाते थे, और कई अन्य लोगों के बारे में भी बताया, जो सुपर 30 द्वारा बनाई जीवनरेखा को थामकर गरीबी के गर्त से बाहर निकल पाए थे।

''अब मैं आपको सुपर 30 के विषय में बताना चाहूँगा। सुपर 30 वंचित वर्ग के छात्रों के लिए एक कार्यक्रम है, जो मैंने कई वर्ष पहले 2002 में आरंभ किया था। मैंने भी गरीबी को बहुत निकट से देखा है। मैं भी अभाव का दर्द समझता हूँ। मेरे पिताजी भारत के डाक विभाग में एक निचले दर्जे के क्लर्क थे। मैं एक गणितज्ञ बनना चाहता था और गणित में हमेशा नए परिणामों तक पहुँचने की कोशिश करता रहता था। मैंने अपने कॉलेज के दिनों में कुछ गणितीय शोध पत्र लिखे थे, जो प्रतिष्ठित विदेशी जर्नल्स में प्रकाशित हुए थे। मुझे कैंब्रिज यूनिवर्सिटी में गणित में उच्च शिक्षा के लिए अध्ययन करने का अवसर मिला था, लेकिन धन की कमी के कारण मैं वहाँ नहीं जा सका। मैंने मदद हासिल करने की बहुत कोशिश की, लेकिन उस समय सभी दरवाजे मेरे मुँह पर बंद कर दिए गए। मेरी दुनिया तो पहले ही उजड़ चुकी थी, जब अपनी निराशा के चरम पर मैंने अचानक अपने पिता को भी खो दिया। अब अपने परिवार का पेट भरने की और निराशाजनक परिस्थितियों को सँभालने की जिम्मेदारी मेरे कंधों पर थी। उस समय मेरा छोटा भाई पद्मभूषण एन. राजम का शिष्य था और उनके संरक्षण में बनारस हिंदू यूनिवर्सिटी में वायलिन बजाना सीख रहा था। पिता की मृत्यु के बाद मुझे डाक विभाग में अनुकंपा के आधार पर नौकरी का प्रस्ताव मिला; लेकिन मैंने उसे अस्वीकार कर दिया और आस-पड़ोस के इच्छुक छात्रों को गणित पढ़ाने लगा। मैंने पास ही एक कमरा किराए पर ले लिया और मेरे छात्र मुझे अपनी सुविधानुसार जब दे सकते, मेरी फीस दे देते थे। लेकिन हमें जीवित रहने के लिए पैसों की

आवश्यकता थी। मेरी माँ पापड़ बनाती थीं, जो एक स्वादिष्ट भारतीय नमकीन है और मैं अपनी साइकिल पर घर-घर जाकर उन्हें बेचता था। कभी-कभी मुझे अपमान का सामना करना पड़ता था; लेकिन मैंने कभी उम्मीद और हिम्मत नहीं छोड़ी। धीरे-धीरे छात्रों की भीड़ बढ़ने लगी और मेरा कार्यक्रम बिहार राज्य के वंचित छात्रों के बीच मशहूर होने लगा। एक बार मेरे पास एक बहुत तीव्र बुद्धि का छात्र आया और बोला कि उसके पास मेरी 500 रुपए की वार्षिक फीस देने की भी क्षमता नहीं थी। लेकिन उसने मुझे आश्वासन दिया कि जब उसके पिता के खेत में आलुओं की पैदावार होगी। तो वह मेरी फीस चुका देगा। मैंने उससे पूछा कि मेरी कक्षाओं में शामिल होने के लिए वो पटना में कैसे रहेगा, तो उसने जवाब दिया कि वह एक अमीर आदमी के घर की सीढ़ियों के नीचे डेरा डालकर रहता है।

''मैं स्वीकार करता हूँ कि मुझे कुछ संशय हुआ और मैंने उस लड़के के पास अचानक पहुँच जाने का निश्चय किया। उस लड़के को संपूर्ण एकाग्रता के साथ भौतिकी की पुस्तक में आँखें गड़ाए देखकर मैं अंदर तक हिल गया। मुझे अपने कठिन दिनों की याद आ गई। यही घटना सुपर 30 कार्यक्रम शुरू करने की प्रेरणा का स्रोत बन गई। मैंने अपने भाई प्रणव कुमार को बुलाया, जो अब तक एक प्रतिभाशाली वायलिन वादक बन चुका था और मुंबई में काम करता था, और हमने एक साथ मिलकर सुपर 30 की योजना पर काम करना शुरू कर दिया। प्रणव पहले भी मेरी मदद करता था, लेकिन अब वो सुपर 30 में सीधे-सीधे शामिल था और उसके प्रबंधन की जिम्मेदारी सँभाल रहा था। गहन जाँच के बाद वंचित वर्गों से 30 गरीब, लेकिन प्रतिभाशाली छात्र सुपर 30 का हिस्सा बनने के लिए चुने गए। विचार था कि उन्हें पूर्णतः निशुल्क आई.आई.टी. कोचिंग प्रदान करना। आवास और भोजन सहित शुरुआत में 30 छात्रों के लिए व्यवस्था करना उतना आसान नहीं था; लेकिन मेरे परिवार ने इस प्रयास के लिए मेरी हर संभव सहायता की। मैं उन छात्रों को पढ़ाकर पैसों की व्यवस्था करता था, जो फीस दे सकते थे; जबकि मेरी माँ जयंती देवी, छात्रों के लिए खाना बनाती थीं। छात्रों के लिए सिर्फ एक लक्ष्य था—पूरे परिश्रम के साथ पढ़ाई करना और अन्य समस्याओं से विचलित न होना। शुरुआती सफलता के बाद, मुझे मौद्रिक दान के बहुत से प्रस्ताव मिले; लेकिन मैंने विनम्रता से अस्वीकार कर दिए। कई लोग मुझसे वित्तीय सहायता स्वीकार न करने का कारण पूछते हैं। कारण स्पष्ट है—मैं साबित करना चाहता हूँ कि यदि आपके पास इच्छा और दृढ संकल्प है तो बिहार में भी, जो भारत का सबसे पिछड़ा राज्य है, आप जो चाहें कर सकते हैं। संसाधनों और बुनियादी सुविधाओं का अभाव किसी को लक्ष्य प्राप्त करने से नहीं रोक सकता।

''जब मेरा कार्यक्रम सफलतापूर्वक चलने लगा तो मुझे प्रशंसा मिली; लेकिन साथ ही पटना का कोचिंग माफिया मेरे खिलाफ खड़ा हो गया। पटना में कोचिंग एक बहुत ही लाभप्रद उद्योग है और सुपर 30 की सफलता और बढ़ती लोकप्रियता उनके सामने खतरा बनकर मँडरा रही थी। तीन बार मुझ पर सशस्त्र अपराधियों ने हमला किया था। एक बार मेरे गैर-

शिक्षण स्टाफ में से एक मुन्ना, बहुत बुरी तरह घायल हो गया था। उसके पेट में चाकू घोंप दिया गया था और उसे तीन महीने तक अस्पताल में जीवन के लिए संघर्ष करना पड़ा था। मेरे कुछ मित्रों ने मुझे पूछा भी कि इतने खतरों के बावजूद मैं सुपर 30 क्यों चला रहा था। लेकिन मैंने कभी हिम्मत नहीं हारी। मैं बिहार सरकार को सहृदय धन्यवाद देना चाहता हूँ कि सरकार ने मुझे दो सशस्त्र अंगरक्षक प्रदान किए और वे अभी भी मेरे साथ हैं। उसके बाद कभी कोई हमला मुझ पर नहीं हुआ। जब परिणाम आने शुरू हुए तो हम बहुत खुश हुए और कुछ चकित भी। पहले ही वर्ष में 18 छात्रों को सफलता प्राप्त हो गई थी। दूसरे वर्ष में 22 छात्रों ने, तीसरे वर्ष 26 छात्रों ने, चौथे वर्ष 28 छात्रों ने, पाँचवें वर्ष 28 छात्रों ने और उसके बाद तीन वर्ष लगातार सभी 30 छात्रों ने आई.आई.टी. की प्रवेश परीक्षा उत्तीर्ण कर ली। जिन छात्रों को आई.आई.टी. में दाखिला नहीं मिला, उन्हें अन्य प्रतिष्ठित इंजीनियरिंग कॉलेज मिल गए। पिछले 12 वर्षों में 308 छात्रों ने आई.आई.टी. जे.ई.ई. के लिए अर्हता प्राप्त की। अब, माफिया मुझे परेशान नहीं करता, लेकिन अन्य रणनीतियों का सहारा लेता है, पिछले कुछ समय से यहाँ गया, नालंदा, यहाँ तक कि राजा, बाजा जैसे नामों के उपसर्ग के साथ सुपर 30 की बाढ़ आ गई है। वह साइनबोर्ड पर नन्हे अक्षरों में मुंबई, राजा या बाजा लिखते हैं और बड़े-बड़े अक्षरों में सुपर 30 लिख देते हैं। उनका उद्देश्य मासूम छात्रों को बेवकूफ बनाकर सुपर 30 की सफलता भुनाना होता है। उनका उद्देश्य होता है इस कार्यक्रम से पैसे बनाना और सरकार के साथ-साथ निजी क्षेत्र से भी वित्तीय दान लेना। कभी-कभी ये चीजें मेरे लिए भी समस्याएँ उत्पन्न कर देती हैं, लेकिन अधिकतर लोग इन चाल चलनेवालों की सच्चाई पता कर ही लेते हैं।

''एक और प्रश्न, जिसका सामना मुझे जहाँ भी मैं जाता हूँ, करना पड़ता है। वो है—आनंद, सुपर 30 के सफलता के पीछे क्या रहस्य है?

''वास्तव में, न तो इसके पीछे कोई जादू है, न ही मैं अन्य लोगों से कुछ अलग हूँ। मैं तो एक बहुत साधारण सा शिक्षक हूँ। सफलता कभी भी आसानी से नहीं मिलती। मुझे लगता है कि इन वंचित छात्रों के प्रशिक्षण के दौरान सबसे महत्त्वपूर्ण चीज है उनके आत्मविश्वास का स्तर बढ़ाना। लंबे समय तक अभावों में रहने के कारण वे किसी भी अन्य छात्र जितने प्रतिभाशाली होने के बावजूद अपनी समस्त आकांक्षाएँ खो चुके होते हैं।

''लेकिन फिर, ऐसा करना इतना आसान नहीं होता। यह वास्तव में एक बहुत मुश्किल काम है; क्योंकि गरीब परिवारों से आए छात्र हमेशा एक गंभीर हीन भावना के साथ शुरुआत करते हैं। हमारा पहला उद्देश्य होता है उन्हें निराशा के बादल से बाहर खींचकर लाना और उन्हें उनकी क्षमताओं का विश्वास दिलाना। एक बार जब वे आई.आई.टी. जे.ई.ई. की पढ़ाई करने के लिए मानसिक रूप से तैयार हो जाते हैं तो हम आधी लड़ाई जीत जाते हैं, क्योंकि आत्मविश्वास उन्हें और अधिक ध्यान केंद्रित करने में मदद करता है। उन्हें यह भी महसूस होने लगता है कि वे भी संपन्न परिवारों के छात्रों जितने योग्य हैं।

‘‘इस बिंदु पर निरंतर बल देते रहने के लिए मैंने दो चरित्रों की रचना की—भोलू और रिक्की। जहाँ रिक्की संपन्न परिवार से आता है, भोलू एक गरीब परिवार से आता है। रिक्की ब्रांडेड कपड़े पहनता है, जबकि भोलू साधारण सा कुरता-पाजामा पहनता है। रिक्की पिज्जा-बर्गर खाता है, जबकि भोलू मक्का और चपाती जैसा साधारण भारतीय खाना खाता है। रिक्की मोटरसाइकिल चलाता है, जबकि भोलू एक पुरानी साइकिल चलाता है। रिक्की अंग्रेजी में बात करता है, जबकि भोलू स्थानीय भाषा में बात करता है। मेरे उदाहरण का पहला भाग हमेशा विशेषाधिकार प्राप्त लोगों और वंचित लोगों की परस्पर विरोधी जीवन-शैली का सुझाव देता है; लेकिन दूसरा भाग इस बारे में होता है कि कैसे उनकी जीवन-शैली से इस बात पर कोई फर्क नहीं पड़ता कि उनकी उपलब्धियाँ क्या होती हैं। जब दोनों के समक्ष एक गणितीय समस्या प्रस्तुत की जाती है तो रिक्की के पास सिर्फ वही एक समाधान होता है, जो उसके शिक्षक ने उसे सिखाया होता है। वो उस प्रश्न को बिल्कुल पाठ्य पुस्तक शैली में और वह भी जल्दी से हल कर लेता है; जबकि भोलू उस प्रश्न के साथ संघर्ष करता है। लेकिन अंत में, भोलू नए समाधानों की खोज करता है और प्रश्न को विभिन्न तरीकों से हल करता है।

‘‘ऐसा करने के दो लाभ हैं—मेरे छात्रों को यह भी सीखने को मिलता है कि सफलता के लिए खेल का मैदान हमेशा समान स्तर का होता है, इस बात की परवाह किए बगैर कि कौन कहाँ पैदा हुआ है। इसलिए, भोलू मेरे छात्रों के लिए रोल मॉडल (आदर्श) बन जाता है। भोलू उन्हें कभी हार न मानना सिखाता है, क्योंकि सफलता प्राप्त करना वह एकमात्र तरीका है, जिससे वे ज्वार का रुख अपने पक्ष में कर सकते हैं। अपनी प्रमुख ताकत के रूप में कड़े परिश्रम के साथ वे उसे हासिल करने में समय नहीं लगाते। परीक्षा भवन में वे जटिल प्रश्नों का सामना भी पूर्ण आत्मविश्वास के साथ करते हैं।

‘‘अब मैं प्रत्येक वंचित छात्र को शिक्षित देखना चाहता हूँ। अब मेरा एक सपना है, मैं अपने छात्रों को एम.आई.टी. में देखना चाहता हूँ। ये मेरा बहुत बड़ा सपना है। मेरे कुछ छात्रों को अच्छी अमेरिकन यूनिवर्सिटी में पढ़ने का अवसर मिला है और वे यहाँ काम कर रहे हैं; लेकिन अब तक किसी को एम.आई.टी. में दाखिला नहीं मिल पाया है। मैं नहीं जानता कि मेरा यह सपना पूरा होगा या नहीं, लेकिन मैं जानता हूँ कि अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मुझे कड़ा परिश्रम करते रहना होगा। इस समय मैं एक टिन शेड के नीचे एक अस्थायी स्कूल में पढ़ा रहा हूँ, इस उम्मीद में कि मेरे छात्र यहाँ तक पहुँचेंगे। मैं अपने छात्रों को नोबेल पुरस्कार विजेताओं एवं फील्ड पुरस्कार विजेताओं के रूप में देखना चाहता हूँ।

‘‘मैं यहाँ आपसे कुछ माँगने नहीं आया हूँ। जैसा कि आप जानते हैं, मैं कोई वित्तीय सहायता स्वीकार नहीं करता। मैं इतनी दूर आप जैसे महान् प्रौद्योगिकी विशेषज्ञों से यह अपील करने आया हूँ कि प्रौद्योगिकी को सिर्फ अधिक-से-अधिक पैसे बनाने का औजार नहीं बने रहना चाहिए। उसका उपयोग अशिक्षा के खिलाफ लड़ाई में एक महत्त्वपूर्ण

हथियार के रूप में करना चाहिए, ताकि गरीब-से-गरीब छात्र को भी उच्च गुणवत्ता की शिक्षा प्राप्त हो सके। आज मुझे महसूस होता है कि प्रौद्योगिकी विशाल लाभ अर्जित करने और मानवीय श्रम पर निर्भरता कम करने के एक महत्त्वपूर्ण उपकरण के रूप में उभरी है। लेकिन अब यह सोचने का समय आ गया है कि इसका उपयोग गरीबी से लड़ने के लिए कैसे किया जा सकता है, जो दुनिया भर में लोगों को प्रभावित करती है। समय आ गया है कि लैब से बाहर निकलकर देशों और गाँवों में व्याप्त गरीबी को महसूस किया जाए, जहाँ लोगों को बुनियादी बिजली और साफ पानी भी नहीं मिलता। ऐसा करने से प्रौद्योगिकी में एक मानवीय आयाम जुड़ जाएगा, जिसकी दुनिया को एक बेहतर जगह बनाने के लिए आवश्यकता भी है। युद्ध की मशीनें हमें युद्ध में विजय दिला सकती हैं, लेकिन हमें शांति और आत्मज्ञान नहीं दे सकतीं।

''आज, दुनिया चाहती है कि प्रौद्योगिकी मानवता को बचाए और उसे गरिमा प्रदान करे और इसके लिए सभी वर्गों से सहयोग की आवश्यकता है। हम सबकी आवश्यकता एक खूबसूरत दुनिया ही तो है। एक दुनिया, जो गरीबी और अशिक्षा से मुक्त हो; एक दुनिया, जिसमें सही समझ और करुणा हो।''

इन शब्दों के साथ आनंद कुमार ने अपना वक्तव्य समाप्त कर दिया। वे आँखों में आँसू और होंठों पर बड़ी सी मुसकान के साथ मंच पर खड़े थे। उन्होंने अपने दोनों हाथ उठाए और झुककर दर्शकों का अभिवादन किया। वे कुछ घबराए से लग रहे थे। लेकिन तालियों की गड़गड़ाहट थम नहीं रही थी। लोग खड़े होकर तालियाँ बजा रहे थे। कुछ निष्पक्ष लोगों की आँखों में आँसू भी थे। उन्होंने एक अडिग ईमानदारी और सच्चे धैर्य का प्रदर्शन देखा था। उन्होंने एक आदमी का उसके भाग्य के खिलाफ संघर्ष देखा था, उसकी निस्स्वार्थता देखी थी और इस आदमी ने उनसे कुछ नहीं माँगा था। ये रोंगटे खड़े कर देनेवाला काम था। आनंद कुमार मंच से नीचे उतरे, अभी भी सिर झुकाए हुए और दर्शकों की प्रतिक्रिया से अभिभूत गोरे लोग खड़े होकर मेरे लिए तालियाँ बजा रहे हैं। कुछ लोग रो भी रहे हैं। उन्होंने चारों ओर देखा और हैरानी से सोचा कि लोग तसवीरें लेने और बात करने उनके पास आ रहे थे। वे सब पर समान रूप से ध्यान दे रहे थे और जहाँ तक संभव था, उनके प्रश्नों के उत्तर भी दे रहे थे।

कार में एम.आई.टी. मीडिया लैब से लौटते हुए आनंद कुमार पिछली सीट पर बैठे हुए पीछे छूटते पेड़ों को, व्यवस्थित ट्रैफिक को, साफ व नीले आसमान को देख रहे थे और उन्हें असीमित अवसर नजर आ रहे थे। उन्होंने सिर घुमाया और अपने भाई प्रणव को देखकर मुसकराए, जो उनकी बगल में बैठे थे।

''हम कितनी दूर आ गए हैं, भैया।'' प्रणव बोले, ''आज पिताजी होते तो उन्हें कितना गर्व होता!''

‘‘हाँ, उन्होंने हमेशा मुझमें कुछ ऐसा देखा था, जो मैं खुद कभी नहीं देख पाया था। मुझे अभी भी वह समय याद है, जब वे मुझसे मजाक करते थे और मेरे पाँव छूने में मुझसे प्रतिस्पर्धा करते थे। जब मैं उनके पाँव छूने की कोशिश करता था, हम कैसे मजाक किया करते थे! वे मुझे शर्मिंदा करते थे और हमेशा मुझसे कहते थे, जब तुम बड़े आदमी बन जाओगे, तब मैं नहीं रहा तो? इसलिए मुझे अभी अपना सम्मान कर लेने दो।’’ आनंद ने अपना सिर हिलाया और अपने आँसू नहीं रोक पाए।

प्रणव ने अपने बड़े भाई के कंधों को अपनी बाँहों से घेरा और बहादुरी से अपनी भावनाओं को काबू करने की कोशिश करते हुए बोले, ‘‘पिताजी ऊपर ही कहीं हैं और हमें देख रहे हैं, भैया। आज आप उन्हीं के आशीर्वाद से एम.आई.टी. में दर्शकों को संबोधित कर रहे थे।’’ आनंद उदासी से मुसकराए और उस समय को याद करने लगे, जब उनकी दुनिया बिखर रही थी और उन्हें एक के बाद एक झटके लग रहे थे उस समय भी उन्होंने अपने भाग्य को स्वीकार नहीं किया था, और आज भी वे सपने देख रहे थे।

हाँ, वे देख रहे हैं, सुपर 30 हमारी भव्य योजनाओं की एक छोटी से पहल है और मैं इसे बहुत बड़ा बनाना चाहता हूँ, ताकि मैं उस सपने को पूरा कर सकूँ, जो पिताजी ने शुरू से देखा था मैं और अधिक छात्रों की मदद करना चाहता हूँ और उस प्रभाव को गुणा करना चाहता हूँ, जो हमने सुपर 30 के साथ देखा है।

दुनिया में कुछ लोग हैं, जो परिस्थितियों को अपने रास्ते की बाधा नहीं बनने देते। आनंद कुमार उनमें से एक थे। जैसा कि ऑस्कर वाइल्ड ने कहा था, ‘हम सब गटर में हैं, लेकिन हममें से कुछ सितारों की ओर देख रहे हैं।’

□

छात्र के मुख से

नाम : शशि नारायण

सुपर 30 बैच : 2004
इंस्टीट्यूट और स्ट्रीम : कंप्यूटर साइंस और इंजीनियरिंग, आई.आई.टी. खड़गपुर
वर्तमान जॉब : रिसर्च एसोशिएट, यूनिवर्सिटी ऑफ एडिनबर्ग

पीछे मुड़कर अपने कैरियर को देखता हूँ तो पाता हूँ कि सुपर 30 का हिस्सा बनना मेरे जीवन को बदल देनेवाली घटना थी। मुझे याद है, जब मैं जेईई की तैयारी के लिए पहली बार पटना आया और दो महीने के अंदर मुझे भीड़ में गुम हो जाने के आतंक का एहसास हुआ। एक अति साधारण परिवार का होने के नाते मैं अपने माता-पिता का बहुत आभारी हूँ, जिन्होंने मेरे लिए कभी कोई सीमा निर्धारित नहीं की। उनके प्रोत्साहन से मैं सुपर 30 के लिए चयनित हुआ और उसके बाद जो भी हुआ, वह सब सुपर 30 की वजह से हुआ।

मुझे लगता है कि पटना में और कई अन्य स्थानों में कई छात्रों, विशेष रूप से कमजोर आर्थिक पृष्ठभूमिवाले छात्रों के पास क्षमता तो होती है, लेकिन उचित मार्गदर्शन का अभाव होता है। सुपर 30 ऐसे प्रतिभाशाली छात्रों के लिए स्वर्ग के समान है। इसने हमें पढ़ाई के लिए एक आदर्श वातावरण, कठोर लेकिन परवाह भरा संरक्षण और बेशक बहुत अच्छे दोस्त दिए और यह सब बगैर किसी शुल्क के इसने हमारे अंदर से भीड़ में गुम होने के डर को बाहर खींचकर निकाला और हमें उस स्तर पर पहुँचाया, जहाँ हम मानने लगे कि हम अपनी अति साधारण पृष्ठभूमि के बावजूद सफल हो सकते हैं। मेरे लिए वह भावना और आंतरिक शक्ति बहुत विशिष्ट थी और मुझे वो आनंद सर और सुपर 30 के कारण मिली। मैं खुद को भाग्यशाली समझता हूँ कि मैं ऐसी महान् संस्था का हिस्सा हूँ, कोटा फैक्टरी का उत्पाद नहीं।

सुपर 30 के बाद मैं कंप्यूटर साइंस और इंजीनियरिंग में मेजर करने आई.आई.टी. खड़गपुर चला गया। आनंद सर हमेशा कहते थे कि मुझे उच्च शिक्षा के लिए जाना चाहिए। मैं मानता हूँ कि मैं उन्हीं के आशीर्वाद से उच्च शिक्षा प्राप्त कर सका। इस समय मैं यूनिवर्सिटी ऑफ एडिनबर्ग में रिसर्च एसोशिएट हूँ, जो विश्व की प्रमुख यूनिवर्सिटी में से एक है।

मैं बाद के वर्षों में सुपर 30 की सफलता की कहानियों पर गर्व महसूस करता हूँ। मैं आशा करता हूँ कि निकट भविष्य में हम ऐसी संस्थाओं पर और काम करेंगे, जो कमजोर पृष्ठभूमि

के छात्रों को विभिन्न कैरियर संभावनाओं के बारे में मार्गदर्शन देती हैं।

2

एक मसीहा का जन्म

राजेंद्र प्रसाद पटना के एक मीठापुर मुहल्ले के गौड़ीय मठ नाम की बस्ती में अपनी पत्नी जयंती देवी, माता-पिता और पैर से विकलांग भाई के साथ रहते थे। वे रेलवे की मेल सेवा में पत्रों की छँटाई का काम करते थे और मुश्किल से गुजारा चलने लायक कमाते थे। भुखमरी उनसे कभी दूर नहीं रहती थी, लेकिन परिवार किसी तरह पेट भरने और उस मकान का किराया भरने जितना जुटा लेता था, जो पटना के मानकों से भी बेहद मामूली था। 8 फीट बाई 8 फीट के दो कमरे, एक साझा रसोईघर और बरामदा, जो दो परिवारों को समायोजित करता था। आधे हिस्से में राजेंद्र प्रसाद और जयंती रहते थे; जबकि उनके भाई मीना प्रसाद और उनका परिवार शेष आधे हिस्से में रहते थे। उनके माता-पिता के पास अपना कोई कमरा नहीं था और वे कभी राजेंद्र के कमरे में और कभी मीना प्रसाद के कमरे में सोते थे।

प्रसाद परिवार उन 7.5 करोड़ लोगों में से था, जो सन् 1973 में बिहार की आबादी का निर्माण करते थे और जिसमें से 70 प्रतिशत गरीबी रेखा के नीचे रह रहे थे। 54 प्रतिशत के राष्ट्रीय औसत की तुलना में भारत की जी.डी.पी. विकास दर राष्ट्रीय स्तर पर 1 प्रतिशत से कम थी और बिहार इस मामूली वृद्धि का भी महत्त्वपूर्ण लाभार्थी नहीं था।

गरीबी एक संकुचित करनेवाली पीड़ा होती है। संपन्न लोग कल्पना भी नहीं कर सकते कि गरीब अपनी परिस्थितियों में रहते हुए एक-एक दिन कैसे गुजारते हैं, लेकिन गरीब लोगों को खुशियाँ भी मिलती हैं। ऐसी चीजें होती हैं, जो उन्हें घोर निराशा से बाहर लेकर आती हैं और ऐसी ही एक खुशी ने प्रसाद परिवार के दरवाजे पर दस्तक दी—और उस खुशी के लिए उससे बेहतर और कोई समय नहीं हो सकता था।

1 जनवरी, 1973 की सर्दियों की एक सर्द शाम थी और राजेंद्र प्रसाद ट्रेन में पत्र छाँटते हुए कलकत्ता गए हुए थे। गौड़ीय मठ में उनकी पत्नी जयंती देवी पसीने से नहाई हुई थीं और प्रसव पीड़ा से बेहाल थीं और महिलाएँ उन्हें एक अलग कमरे में ले गई थीं। शांति देवी ने दृढ़तापूर्वक दो अन्य महिलाओं को निर्देश दिए और जयंती देवी को कोमल स्वर में आश्वस्त करने लगीं; लेकिन अपने दिल में वे डरी हुई थीं।

पाँच साल पहले राजेंद्र प्रसाद के सबसे छोटे भाई नरेंद्र के कैंसर के आगे घुटने टेक देने के बाद से उनका परिवार उदासी में डूबा हुआ था। वह सिर्फ 18 वर्ष का था। परिवार

की नरेंद्र से बहुत उम्मीदें थीं, क्योंकि वो एक प्रतिभाशाली युवक था। जिसमें डॉक्टर बनने के गुण थे। लेकिन दुर्भाग्य से किस्मत की कुछ और ही योजनाएँ थीं। डॉक्टर बनकर परिवार को गरीबी से मुक्त करने के बजाय नरेंद्र को कैंसर से बचने के प्रयास में परिवार की पूरी जमा-पूँजी खर्च हो गई। उन्होंने पूरा एक साल मुंबई के टाटा कैंसर सेंटर में बिताया। लेकिन अंत में जीत कैंसर की हुई;

इस क्षति का असर पूरे परिवार पर हुआ, लेकिन इस दुःख को सहने में सबसे अधिक मुश्किल शांति देवी को हुई। उन्हें इस क्षति ने तोड़कर रख दिया। दिन बीतते गए, लेकिन उनका दुःख कम नहीं हुआ। परिवार को डर था कि वे तनावग्रस्त हो जाएँगी और उन्हें लगा कि शायद वातावरण बदलने से उन्हें मदद मिले। उन्होंने दिल्ली में रहनेवाले रिश्तेदारों के पास जाकर कुछ दिन रहने का निर्णय लिया। हालात और बिगड़ गए, जब राजेंद्र प्रसाद और जयंती देवी ने अपनी छह माह की बेटी को संक्षिप्त बीमारी में खो दिया। दिल्ली के रिश्तेदार भी कठिनाई से जीवन बिता रहे थे, लेकिन फिर भी उन्होंने पर्याप्त करुणा दिखाई और शांति देवी को गौड़ीय मठ की भयावहता से कुछ दिनों की राहत प्रदान करने को तैयार हो गए।

दिल्ली में शांति पाने के लिए बेताब शांति देवी एक दानेवाले बाबा के पास गईं, जो लोगों की बीमारियों के बारे में सुनते थे और फिर इलाज के रूप में अनाज के कुछ दाने देते थे। शोकाकुल शांति देवी ने बाबा को अपने जवान बेटे और नन्ही पोती की अचानक मृत्यु के बारे में बताया। बाबा ने उन्हें एक दाना दिया और बोले, 'तुम क्यों रो रही हो? तुम्हारा बेटा ठीक है और रास्ते में है। अपने घर वापस जाओ।' शांति देवी आश्चर्यचकित हो गईं। लेकिन उन्हें बाबा पर विश्वास था। उन्होंने उसी रात पटना वापस जाने के लिए ट्रेन पकड़ ली और जब वे घर पहुँचीं तो उन्हें पता चला कि जयंती देवी गर्भवती थीं। उन्होंने अपनी बहू को गले लगा लिया और धीरे से बोलीं, ''चिंता मत करो, हमारी बुरी किस्मत चली जाएगी।''

गर्भावस्था का समय बहुत नाजुक था, क्योंकि जयंती देवी ने कुछ ही महीनों पहले अपनी बच्ची खोई थी और वे बहुत कमजोर शारीरिक व मानसिक स्थिति में थीं। इस दूसरी त्रासदी ने परिवार को और गहरी निराशा में डुबो दिया था। इसलिए, शांति देवी दिल्ली से अपने घर एक उम्मीद और वादे के साथ लौटीं और तब से उन्होंने अपनी बहू की अच्छी तरह से देखभाल की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली।

उनका घर रेलवे की पटरियों से 15 फीट की दूरी पर था और जितनी बार कोई ट्रेन वहाँ से गुजरती, उनका छोटा सा घर खड़खड़ाने लगता और नीचे की जमीन हिलने लगती। 1

जनवरी को जब सब महिलाएँ एक कमरे में बंद हो गईं तो परिवार का प्रत्येक सदस्य अपने निजी डर का सामना करते हुए किसी अच्छी खबर के लिए उत्साह से प्रार्थना करने लगा।

जब शांति देवी ने बच्चे को अपने हाथों में लिया तो कई वर्षों के बाद उनके चेहरे पर एक वास्तविक मुसकान आई। मेरा बेटा वापस आ गया। वे किसी मंत्र की तरह लगातार दोहरा रही थीं। राजेंद्र के पिता कामता प्रसाद ने, जो गली में चहलकदमी कर रहे थे, जबकि उनका बेटा मीना प्रसाद चुपचाप बरामदे में बैठा था, घर के अंदर से आती रोने की आवाज सुनी तो भागकर अंदर गए। उन्हें ये सब एक चमत्कार लग रहा था। उनके परिवार को हाल में इतने दुर्भाग्य का सामना करना पड़ा था कि उन सबने इस बात पर विश्वास करना शुरू कर दिया था कि उनके जीवन में इस निराशाजनक अस्तित्व के अलावा कुछ बचा ही नहीं था।

शांति देवी एक मोटे कंबल में लिपटे बच्चे को दोनों पुरुषों के पास लाईं। मीना प्रसाद की खुशी का ठिकाना नहीं था। उसे अफसोस हो रहा था कि उसका भाई उस समय वहाँ नहीं था। इसके अलावा, उसे अपनी माँ को फिर से मुसकराता देख बहुत राहत महसूस हो रही थी। अचानक वह घर, जो भूतिया और अँधेरा सा लगता था, खुशी और आशा से चहकने लगा। सब एक-दूसरे से गले मिलकर खुशी के अतिरेक से रोने लगे। पड़ोसियों ने घर से आती आवाजें सुनीं तो वे भी उनके घर के बाहर एकत्र हो गए और जल्दी ही पूरे मोहल्ले में खबर फैल गई कि प्रसाद परिवार में एक स्वस्थ बालक का जन्म हुआ है।

दो दिन बाद राजेंद्र प्रसाद ट्रेन से उतरे, इस बात से अनजान कि घर में कौन सी खबर उनका इंतजार कर रही थी। वे काफी चिंतित थे और जल्दी-से-जल्दी अपनी पत्नी के पास पहुँचना चाहते थे, क्योंकि वे जानते थे कि वह इस गर्भ को लेकर कितनी घबराई हुई थी। रास्ते में उन्हें रमेश शर्मा मिले, जिन्होंने उन्हें पिता बनने को लेकर छेड़ा और दिल से बधाई दी। राजेंद्र हैरान हो गए। संचार सुविधा की कमी के कारण उन्हें बिल्कुल अंदाजा नहीं था कि बच्चे का जन्म हो चुका था। घर के पास पहुँचने पर उन्होंने अपने कदम तेज कर दिए। और अंतिम कुछ मीटर तो उन्होंने भाग कर तय किए उनका भाई मीना प्रसाद उन्हें गले से लगाकर चिल्लाने लगा, लड़का हुआ है। और राजेंद्र अपने घुटनों के बल जमीन पर बैठ गए। उनकी आँखें आसमान की ओर थीं और हाथ प्रार्थना में जुड़े हुए थे।

उन्होंने अपनी माँ और पत्नी को देखा। शांति देवी ने खुशी के आँसुओं के साथ कहा, ‘‘आनंद आ गया! अब सब ठीक हो जाएगा। और इसी के बाद बच्चे का नाम आनंद हो गया।’’

आनंद गौड़ीय मठ में बड़ा हुआ, जो पटना की ओर जानेवाली एक मुख्य सड़क और दिल्ली-हावड़ा रेलवे लाइन, जो बिहार की सबसे व्यस्त रेलवे लाइन है, के बीच स्थित था।

रेल की पटरियाँ मध्य भारत से पूर्वी भारत की ओर यात्री और माल ले जाने में व्यस्त रहती थीं और अभी भी रहती हैं। आनंद, अपने नाम के अनुरूप, प्रसाद परिवार में खुशियाँ लेकर आया था और कभी-कभी वे भूल जाते थे कि वे इतनी गंदगी के बीच रहते थे और अशक्त कर देनेवाली गरीबी से कुछ ही इंचों की दूरी पर थे।

आनंद के दादा कामता प्रसाद जब भी मंदिर या किसी अन्य सामाजिक समारोह में जाते तो नन्हे आनंद को अपने कंधों पर बैठाकर ले जाते। बारिश के दिनों में या कड़ी धूप में वे अपनी लुंगी उतारकर मौसम के प्रकोप से बचाने के लिए बच्चे के चेहरे को ढक देते और घर के अंदर सिर्फ अपने चारखाने के जाँघिये में प्रवेश करते।

आनंद के दादाजी शौक के तौर पर तबला बजाते थे और बालक को अपने खिलौनों पर हाथ मारकर या जब खिलौने सामने नहीं होते थे तो एक काल्पनिक तबले पर अपनी उँगलियों की थाप देकर उनकी नकल उतारने में मजा आता था। दुर्भाग्य से आनंद जब सिर्फ तीन वर्ष का था तो उसके दादाजी की मृत्यु हो गई, इसलिए वह लंबे समय तक उनके अनुभव और प्यार का लाभ नहीं उठा पाया; लेकिन परिवार के बाकी सदस्यों ने कामता प्रसाद की मृत्यु के बाद आनंद का और अधिक ध्यान रखकर उनकी कमी को पूरा कर दिया।

आनंद के जन्म के दो वर्ष बाद परिवार में और वृद्धि हुई। उसके भाई प्रणव के जन्म के साथ, जो उसका सबसे अच्छा मित्र बन गया, स्कूल के पहले के उन शुरुआती दिनों में उनके घर का 3 फीट बाई 6 फीट का दालान उनका खेल का मैदान था। मीना प्रसाद का बेटा ओम कुमार उनके तात्कालिक वृत्त की तिकड़ी को पूरा कर देता था, लेकिन गौड़ीय मठ के आसपास की गलियों के सभी बच्चे उन तीनों के लिए उनके निरंतर साथी थे।

आनंद एक शरारती और उत्सुक बालक था। उसकी माँ अकसर उसे किसी-न-किसी बवाल में फँसा हुआ पाती थी, जिनमें से ज्यादातर के लिए वह खुद ही जिम्मेदार होता था।

वो हर एक चीज के काम करने का तरीका जानना चाहता था। वो जानना चाहता था कि मोटर गाड़ियाँ पेट्रोल से क्यों चलती थीं, पानी से क्यों नहीं; वो जानना चाहता था कि टॉर्च और रेडियो को बैटरी की जरूरत क्यों होती है। जहाँ अन्य बच्चे अपने खिलौनों से खेल कर संतुष्ट रहते थे, उसे मुख्य रूप से खुशी मिलती थी खिलौने को तोड़कर देखने में कि वह कैसे काम करता था।

जब आनंद ने पहली बार चुंबक देखी तो वह पूरी तरह मोहित हो गया था। वह जानना चाहता था कि क्यों लोहे के सिर्फ कुछ ही टुकड़े चुंबकीय होते थे और क्यों वह सिर्फ धातुओं को आकर्षित करते थे, गैर-धातुओं को नहीं। उसने अपने कई दोस्तों से पूछा,

लेकिन उसे सबसे अलग-अलग जवाब मिले। फिर वह किसी बड़े के पीछे पड़ा तो उन्होंने बताया कि एक लोहे के टुकड़े में चुंबकीय शक्ति तब विकसित होती है जब उसे बिजली का झटका दिया जाता है। अब आनंद को खुद ऐसा करके देखना था। उसने अपने घर में इधर-उधर लटक रहे बिजली के कुछ तारों का प्रयोग किया, जिसका नतीजा शॉर्ट सर्किट के रूप में सामने आया। एक जोर का धमाका हुआ और बिजली गुल हो गई। आनंद घबरा गया। बड़ों से सजा मिलने के डर से वह वहाँ से भाग गया और कुछ दूर जाकर छुप गया। वो घर तभी लौटा, जब मकान मालिक ने फ्यूज ठीक कर दिया और घर में बिजली आ गई।

एक अन्य दोस्त ने उसे बताया कि यदि लोहे को रेल की पटरियों पर रखा जाए और उस पर से ट्रेन गुजर जाए तो दबाव के कारण उसमें चुंबकीय गुण उत्पन्न हो जाएँगे। आनंद उत्साहित हो गया और फौरन लोहे के कुछ टुकड़े लेकर अपने घर के पीछे मौजूद रेल की पटरियों पर पहुँच गया। दोस्तों की मौजूदगी में, उसने लोहे के टुकड़े ध्यान से पटरियों पर रखे और इंतजार करने लगा। कुछ ही देर में एक ट्रेन आई और उन टुकड़ों पर से गुजर गई। ट्रेन के जाने के बाद प्रसन्न आनंद ने उन टुकड़ों में चुंबकीय शक्ति की जाँच की; लेकिन उसके हाथ निराशा लगी। बाद में अपनी स्कूली शिक्षा के दौरान उसे समझ में आया कि लोहे के टुकड़ों में चुंबकीय गुण उत्पन्न करने के लिए चुंबकीय क्षेत्र की आवश्यकता होती है, सिर्फ दबाव या बिजली की नहीं हालाँकि, परिणामों के बावजूद, ये प्रयोग उसके शुरुआती दिनों का महत्त्वपूर्ण हिस्सा थे।

जैसे-जैसे वह बड़ा होने लगा, परिवार के सदस्यों और पड़ोसियों को आनंद के अनूठे तरीकों और चुनौतियाँ सुलझाने की उसकी लगन की आदत पड़ने लगी। जब वह दस या ग्यारह वर्ष का था तो उसने काल्पनिक रेडियो की रचना करके एक खेल बनाया। स्वाभाविक रूप से उस काल्पनिक रेडियो को काल्पनिक एंटीना की आवश्यकता थी, जिसे अच्छा रिसपोंस पाने के लिए जितना संभव हो, उतना ऊँचा रखना था। ऐसा करने के लिए चढ़ाई की कई घटनाएँ हुईं, जिनमें से सब सफल नहीं रहीं। ये घटनाएँ इतनी आम हो गई थीं कि ऐसे ही एक चढ़ाई अभियान के दौरान जब वह पास के एक खंभे से गिरा तो उसकी चीखने की आवाज सुनकर पड़ोसियों ने सिर हिलाकर कहा, आनंद होगा।

आखिरकार, उसने काल्पनिक रेडियो से वास्तविक रेडियो तक का सफर तय कर लिया। रेडियो से आवाज आ रही थी और वह खुद तो गानों को सुन ही रहा था और लोगों को सुनाने की भी कोशिश कर रहा था। जब भी उसे कोई टूटा हुआ रेडियो मिलता तो वह उसे घर लाकर उसकी मरम्मत करने की कोशिश करता। अपने इन प्रयासों में उसने उनमें से कई को पूरी तरह खराब कर दिया। लेकिन उसके प्रयोग हमेशा बेकार नहीं जाते थे और फिर एक दिन आया, जब उसने अपने हाथों से एक रेडियो ठीक कर ही दिया। हालाँकि उस रेडियो ने कुछ ही दिन काम किया, लेकिन युवा आनंद के लिए वह एक निर्णायक क्षण था,

क्योंकि उसने सीख लिया था कि दृढ़ संकल्प से आप किसी भी चुनौती का सामना कर सकते हैं।

संगीत प्रसाद परिवार की परंपराओं का अभिन्न हिस्सा था। अपने दादाजी के पद-चिह्नों पर चलते हुए आनंद ने मात्र 11 वर्ष की उम्र में पटना के मशहूर रवींद्र भवन आर्ट थिएटर में आयोजित तबला वादन प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार जीता। मीना प्रसाद ने हारमोनियम बजाया था और वे प्रेमपूर्वक याद करते हैं कि आनंद का प्रदर्शन कितना अद्भुत और मनोरंजक था।

राजेंद्र प्रसाद आनंद को एक अच्छे स्कूल में भेजने के इच्छुक थे। वे अच्छी तरह समझते थे कि शिक्षा ही गरीबी के चंगुल से बाहर निकलने का एकमात्र रास्ता है और यही बात वे आनंद के दिमाग में भी अच्छी तरह स्थापित करने का प्रयास कर रहे थे। जब आनंद 4 वर्ष का हुआ तो उसका दाखिला पटना के सेंट जोजफ कॉन्वेंट स्कूल में हो गया।

हमेशा से एक बोधगम्य बच्चा रहा। आनंद संपन्न परिवार के बच्चों और खुद के बीच के फर्क को गौर से देखता था। जहाँ गौड़ीय मठ में फटे-पुराने कपड़े पहनना और सड़क के किनारे बिकनेवाली चीजें भी खरीद पाने के लिए पैसे न होना सामान्य बात थी, वहाँ पर अन्य छात्रों के साफ-सुथरे, लाड़-प्यार से दमकते चेहरे उसके मन में कसक पैदा करते थे। लेकिन उसे अधिक दिनों तक यह तकलीफ नहीं सहनी पड़ी। निजी संस्थान होने के कारण राजेंद्र के लिए वहाँ अपने बेटे को पढ़ा पाना मुश्किल था और जब वह कक्षा 4 में था तो आनंद को मॉडल सेंट जेवियर्स स्कूल में स्थानांतरित कर दिया गया। यह पहली बार था, हालाँकि दु:खद रूप से अंतिम बार नहीं कि आनंद ने सीखा कि कैसे पैसा एक विशेषाधिकार था और किस तरह गरीबी आपके मुँह पर अवसरों के दरवाजे बंद कर देती है।

राजेंद्र प्रसाद आनंद को चाय के साथ सुबह-सुबह जगाते थे और कभी-कभी उसे बिस्तर से उठाने के लिए गाना भी सुनाते थे...जागो मोहन प्यारे। आनंद बिस्तर से उछलकर बाहर निकलता और अपने पिता के पाँव छू लेता। कभी-कभी आनंद को शर्मिंदा करते हुए, जवाब में उसके पिता भी उसके पाँव छू लेते, जैसे कि उससे प्रतिस्पर्धा कर रहे हों—तुम किसी दिन बड़े आदमी बन सकते हो, जिसके पाँव सब लोग छुएँगे। अगर तब तक मैं नहीं रहा तो? आनंद के विरोध करने पर वे हँसते हुए कहते। सुबह की यह बातचीत इस युवक के व्यक्तित्व के निर्माण में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रखती थी। भले ही राजेंद्र प्रसाद गरीब थे, लेकिन वे बुद्धिमान थे और आनंद के साथ महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर चर्चा करते थे। आनंद की राजनीति और दुनिया को देखने के उसके नजरिए पर उसके पिता के अनुभवों और संवेदनशीलता का गहरा प्रभाव था।

राजेंद्र प्रसाद देवदहा नाम के गाँव में बड़े हुए थे, जो पटना से सिर्फ 30 किलोमीटर की दूरी पर था, हालाँकि वह 1,000 कि.मी. भी हो सकता था, यह देखते हुए कि दोनों स्थानों में कितनी भिन्नता थी। पटना एक बड़ा शहर था, जबकि 1950 के दशक में जब राजेंद्र किशोरावस्था में थे, देवदहा की आबादी सिर्फ 2,000 थी। प्रसाद परिवार के पास बहुत ही थोड़ी जमीन का संयुक्त स्वामित्व था और राजेंद्र के पिता कामता प्रसाद कुलपति थे। बिहार में उस समय भारत के अधिकांश हिस्सों की तरह भूमि सबकुछ होती थी और सबसे धनी परिवार बड़े-बड़े जमींदारों के होते थे, जो अपने कर्मचारियों को गुलामों से कुछ ही बेहतर समझते थे। कामता प्रसाद के पास भूमि थी, लेकिन वे एक छोटे भू-स्वामी थे और परिवार के लिए पैसा एक दुर्लभ वस्तु थी, जबकि वे गाँव के चिकित्सक भी थे। वे कृतज्ञ गाँववालों को पारंपरिक ओषधियाँ देते थे, लेकिन उनकी पैसे चुकाने की क्षमता न्यूनतम थी। इसलिए कामता प्रसाद के बच्चों के नसीब में एक कमीज और एक नेकर ही होती थी, जो वे साल भर चलाते थे।

विडंबना ही थी कि कामता प्रसाद के खुद चिकित्सक होने के बावजूद उनके आठ बच्चे जवान होने के पहले ही स्वर्ग सिधार गए, और ऐसा आधुनिक दवाओं के अभाव और समुचित आहार के अभाव के परिणामस्वरूप हुआ। यह जानते हुए कि शायद शिक्षा ही वह एकमात्र रास्ता था, जो उनके बेटे को ग्रामीण बिहार के कष्टप्रद जीवन से बाहर निकाल सकता था, कामता ने राजेंद्र को उसकी पुस्तकों पर ध्यान देने के लिए और जितनी हो सके, शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित किया। कई वर्षों बाद राजेंद्र भी आनंद के साथ ऐसा ही करने वाले थे; हालाँकि ऐसा करने की तुलना में कहना आसान था, क्योंकि देवदहा में एक बच्चे के लिए शिक्षा प्राप्त करना कोई आसान काम नहीं था। सबसे निकट का स्कूल लगभग 6-7 कि.मी. दूर था और गाँव का जो बच्चा स्कूल जाना चाहता था, उसे पढ़ने के लिए प्रतिदिन पैदल आना-जाना पड़ता था।

जब राजेंद्र युवा थे तो उन्हें लगता था कि उनके भाई मीना प्रसाद को भी, जो बचपन से ही विकलांग था और ठीक से नहीं चल पाता था, पढ़ने का अवसर मिलना चाहिए और इसलिए वह प्रतिदिन अपने बड़े भाई को कंधों पर बैठाकर स्कूल ले जाते थे। भीषण गरमी के दिनों में भी खुद पसीने से तर-बतर होने के और रास्ते में साँस लेने के लिए कई बार रुकने की आवश्यकता पड़ने के बावजूद वह अपने भाई को लेकर जाते थे। राजेंद्र बहुत ही प्रतिभाशाली छात्र थे और उन्होंने दसवीं कक्षा प्रथम श्रेणी के अंकों के साथ उत्तीर्ण की। सन् 1961 में वे आगे की पढ़ाई के लिए पटना चले गए और इस प्रकार वे गौड़ीय मठ पहुँच गए, जहाँ वे अपने परिवार के पहले कॉलेज स्नातक बनने वाले थे।

सन् 1966 में राजेंद्र ने जयंती से विवाह किया और मीना प्रसाद को साथ लेकर वे इस छोटे से दो कमरे के मकान में आ गए, जहाँ आगे जाकर आनंद कुमार का जन्म होने वाला था।

एक दिन गौरियामठ के आसपास के पूरे इलाके में एक धमाके की आवाज सुनाई दी, जिसने वहाँ के निवासियों को उनकी दिनचर्या से और उनके घरों से बाहर निकलने पर मजबूर कर दिया। वहाँ उपस्थित लोगों ने एक विशाल सफेद रोशनी देखी और फिर अँधेरा हो गया और अब उनके सामने एक छोटी सी आग में जलता हुआ प्लास्टिक रह गया इस अपराध का संयोजक और कोई नहीं बल्कि जिज्ञासु आनंद कुमार था, जो अब ग्यारह वर्ष का था।

क्या हुआ? जयंती देवी ने अपने बेटे को गुस्से से घूरते हुए पूछा। उसकी हरकतें अब उनकी दिनचर्या का हिस्सा बनती जा रही थीं। लेकिन यह हरकत जिस परिमाण की थी, उसमें उसके सक्षम होने की उन्होंने कल्पना भी नहीं की थी। पड़ोसी भी बहुत नाराज लग रहे थे। ग्यारह वर्ष के बालक ने अपनी माँ की ओर और संख्या में बढ़ते पड़ोसियों की ओर शरमाते हुए देखा और अपने पास रखी बाल्टी भर मिट्टी से बची-खुची आग बुझाने लगा। पूर्व चिंतन के इस सबूत को देखकर जयंती देवी का गुस्सा और बढ़ गया।

'अपने पिताजी को आने दो, ऐसे खतरनाक प्रयोग करने के लिए तुम्हें अच्छी सजा मिलेगी।' और आनंद के विरोध की उपेक्षा करते हुए वे अपने काम निपटाने चली गईं। शाम को जब राजेंद्र प्रसाद घर आए तो उन्हें आनंद की हरकत के बारे में बताया गया, 'ठीक-ठीक बताओ, क्या हुआ? मैं आनंद के मुँह से ही सुनना चाहता हूँ।' कोई कुछ कहता, उसके पहले ही आनंद के पिताजी ने घोषणा कर दी। सब लोग उस बालक की ओर देखने लगे, जिसे देखकर ऐसा लग रहा था जैसे वो दीवार में समा जाने की कोशिश कर रहा हो।

'पिताजी, बात यह है कि हम स्कूल में केमिस्ट्री पढ़ रहे थे और उसमें यह समीकरण था कि यदि आप कार्बाइड और पानी को मिलाते हैं और उसे गरम करते हैं तो आपको बड़ी मात्रा में ऊर्जा मिलती है।' आनंद ने पेशकश की।

'कैसी ऊर्जा? वो तो एक छोटे बम विस्फोट की तरह था।' उसकी माँ ने बीच में टोका। दूसरी ओर उसके पिता ने, जो नाराज से ज्यादा उत्सुक थे, पूछा कि 'कार्बाइड क्या होता था?' कॉलेज स्नातक होने के नाते उन्हें उसके बारे में पढ़े या सुने होने की धुँधली-सी याद थी, लेकिन वह ठीक से याद नहीं कर पा रहे थे कि वह वास्तव में क्या होता था।

'यह एक कंपाउंड होता है।' आनंद ने जवाब दिया। 'मैं देखना चाहता था कि इस प्रतिक्रिया द्वारा उत्पादित ऊर्जा एक कार चलाने के लिए पर्याप्त होगी या नहीं।' आनंद ने स्वीकार किया, 'लेकिन शायद कुछ गड़बड़ हो गई।'

राजेंद्र प्रसाद ने विचारपूर्ण मुद्रा में सिर हिलाया और उससे कहा कि वास्तव में कोई गलती ही हो गई होगी। जयंती देवी अपने पति से नाराज थीं, क्योंकि उन्होंने बेटे को उससे

अधिक कुछ नहीं कहा और वे राजेंद्र को गुस्से से घूरने लगीं। उनकी गुस्से भरी नजरों को देखकर राजेंद्र को वार्त्तालाप का मूल उद्देश्य याद आया और वे आनंद की ओर उँगली हिलाते हुए बोले, 'ओह, ओह! हाँ, हाँ, आइंदा कभी इस तरह की हरकत मत करना!' लेकिन यदि आपने आनंद कुमार से पूछा होता तो वे बताते कि उनके पिता वास्तव में उनसे नाराज नहीं थे, वे बस अपने बेटे के प्रयोगों से आनंदित थे। बस, किसी की जान मत लेना। जैसे ही उसकी माँ वहाँ से गईं, उन्होंने मजाक किया और बाप-बेटे दोनों मंद-मंद मुसकरा रहे थे। मुझे तुमसे बहुत बड़ी उम्मीदें हैं, आनंद को पिता का एक दिन कहना याद आता है, 'यदि तुम सच में एक वैज्ञानिक बनना चाहते हो तो तुम्हें बहुत पढ़ाई करनी पड़ेगी। गणित बहुत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि उसकी आवश्यकता विज्ञान में भी होती है।' उसके पिता ने उसके गाल थपथपाते हुए कहा, 'पता नहीं क्यों, लेकिन मुझे महसूस होता है कि तुम कोई बहुत बड़ा काम करोगे।'

जब आनंद स्कूल में नहीं होता या पढ़ाई नहीं कर रहा होता तो वह अपना खाली समय बिताने के ऐसे तरीके ढूँढ़ता, जिनमें अधिकांश बच्चों को कोई दिलचस्पी नहीं होती। जहाँ उसके अन्य दोस्त विभिन्न खेलों की ओर आकर्षित होते, मुख्यतः फुटबॉल और क्रिकेट की ओर। आनंद की दिलचस्पी विभिन्न प्रयोग करने और नई-नई चीजें बनाने में होती थी। वह तरह-तरह के प्रयोग करता और जो कुछ भी वह अपनी किताबों में देखता, वो उसके प्रयोग का विषय बन जाता। मोम से बने ज्वालामुखी, मॉडल मोटर कारें...वो हमेशा नए प्रयोग करने के लिए बेचैन रहता था।

औजार हमेशा उसके पास होते थे, और स्थानीय तकनीशियन नवोदित प्रयोगकर्ता को पुराने टेलीफोन सेट और डाइनेमो जैसे टूटे-फूटे उपकरणों की आपूर्ति कर देते थे। यह पूरी तरह स्पष्ट हो चुका था कि बेकार चीजों से कुछ नया निर्मित करना उसे उत्तेजित करता था।

जब मोहल्ले के बच्चे क्रिकेट खेलते थे, आनंद विज्ञान की उन फटी-पुरानी पुस्तकों को पढ़ता था, जो उसके पिता किसी तरह बचाए पैसों से पुरानी पुस्तकों की दुकान से खरीदकर लाते थे। दूसरी ओर, समय के साथ यह स्पष्ट होता गया कि उसके छोटे भाई प्रणव को संगीत में ज्यादा दिलचस्पी थी। प्रणव अपने पिता के पद-चिह्नों का अनुसरण करते हुए एक वायलिन वादक के रूप में अपनी योग्यता का विकास कर रहा था।

1970 के दशक के अंत और 1980 के दशक के आरंभ में कई भारतीय परिवारों के लिए स्कूल जानेवाला बच्चा उनके लिए एक सुनहरे अवसर के समान होता था और जैसे-जैसे भारत में प्रौद्योगिकी उद्योगों ने फलना-फूलना शुरू किया, माता-पिता की अपेक्षाएँ, कि उनके बच्चे विज्ञान की पढ़ाई करके अच्छी नौकरियाँ पाएँ, भी बढ़ने लगीं। चूँकि आनंद पहले से ही एक उत्साहित छात्र की भूमिका का निर्वाह कर रहा था, प्रणव को उसकी

संगीत प्रतिभा का विकास करने की स्वतंत्रता दे दी गई। वह आगे जाकर भारतीय संगीत परिदृश्य में एक यशस्वी वायलिन वादक बनकर कार्यक्रम प्रस्तुत करने लगा था; लेकिन अंततः भाग्य ने उसे जीवन की दिशा बदलने के लिए बाध्य कर दिया था।

बाद के वर्षों में पिता के साथ हुए वार्त्तालापों से आनंद कुमार को महसूस हुआ कि उसके पिता को उस गरीबी का पूरा एहसास था, जिसने उनके परिवार को और उनके पड़ोसियों के परिवारों को कई पीढ़ियों से जकड़ रखा था। वे इस बात से भयभीत थे कि उनकी जन्मभूमि बिहार में अवसरों के अभाव ने राज्य के अधिकांश वंचितों पर अपना विनाशकारी जाल फैला दिया था। जहाँ भारत के कई हिस्से औद्योगिकीकरण और आधुनिकता की दिशा में कदम बढ़ा रहे थे, बिहार विकास के मामले में स्थिर खड़ा था। इससे भी बदतर यह एहसास था कि कई मामलों में वह पीछे की ओर जा रहा था।

राज्य भर में सार्वजनिक शिक्षण संस्थानों के पतन की शुरुआत होने लगी थी और जाति-आधारित संघर्षों से उत्पन्न होनेवाला रक्तपात एक बार फिर खबरों में छाया हुआ था। उन्हें यह वास्तविकता भी दुखी करती थी कि अनेक बिहारी भारत के अन्य राज्यों की ओर पलायन कर रहे थे और उनमें से अधिकांश कभी लौटकर नहीं आए थे।

राजेंद्र प्रसाद को विश्वास था कि बिहारी लोग अत्यंत प्रतिभाशाली और योग्य होते थे; लेकिन उनके पास उनकी योग्यता प्रदर्शित करने के लिए कोई मंच नहीं था। उन्होंने बचपन से वह अप्रत्याशित खेल देखा था, जो मानसून किसानों के साथ खेलता था। बारिश अधिकतर या तो बहुत कम होती थी या बहुत ज्यादा। कभी-कभी ही उसका संतुलन सही होता था। गंगा नदी भी अपने आसपास कहर बरपाने के लिए जानी जाती थी। जब मानसून आवश्यकता से अधिक बारिश भेज देता था, उनका अपना गाँव भी कई बार बाढ़ की चपेट में आ चुका था।

आनंद के बड़े होने के दौरान राजेंद्र इन सब बातों पर उससे खुलकर चर्चा करते थे और समय बीतने के साथ जब उनके बेटों ने किशोरावस्था में प्रवेश कर लिया तो वे नाश्ते के समय उन्हें राजनीतिक व सामाजिक चर्चाओं में शामिल करने लगे। हर सुबह वे तीनों अखबार को विभाजित कर लेते और अपनी दिलचस्पी की खबरें चुनकर पढ़ते। फिर वे उन खबरों पर चर्चा करते।

''मैं अपने पिता की नजरों के माध्यम से दुनिया को एक अलग नजरिए से देखने लगा।'' आनंद कहते हैं, ''आज मैं कोशिश करता हूँ कि प्रतिदिन 4 या 5 अखबार पढ़ सकूँ, और इस आदत के लिए पिताजी को धन्यवाद देता हूँ।''

आनंद कुमार ने अपनी गणितीय प्रतिभा का संकेत दसवीं कक्षा में आने के बाद ही देना शुरू किया—काफी कुछ अल्बर्ट आइंस्टाइन की तरह, जिनकी गणित में उत्कृष्टता भी उनकी किशोरावस्था के मध्य में दिखनी शुरू हुई थी। जयंती देवी ने ध्यान दिया कि उसका गणित में प्रदर्शन काफी बेहतर होता जा रहा है, जो कि उसके उच्च अंकों से स्पष्ट था। उसके अध्यापक भी इस विषय में उसकी उच्च क्षमता पर टिप्पणी करने लगे थे।

दसवीं कक्षा उत्तीर्ण करने के बाद उसने पटना के बी.एन. कॉलेज में दाखिला ले लिया, जहाँ उसके साथी विज्ञान विषयों का चुनाव कर रहे थे, ताकि वे एक दिन इंजीनियरिंग के पेशे में जा सकें। वहीं आनंद ने ट्रैक पर रहते हुए गणित का चुनाव किया।

''उस विषय का चुनाव करो, जिसके साथ तुम सहज महसूस करो।'' उसके पिता ने सुझाव दिया, ''लेकिन सुनिश्चित करो कि तुम्हें उस विषय में उत्कृष्टता प्राप्त हो।''

जहाँ पटना में जीवन हमेशा की तरह चलता रहा, एक छात्र—सबसे अनजान—अपने वास्तविक रूप में आया और खुद में एक जन्मजात प्रतिभा की खोज की।

स्वाभाविक रूप से यह आसान नहीं था। अब तक वह जिस प्रकार का गणित पढ़ रहा था, वह मुख्यतः सैद्धांतिक था और राह में आनेवाली बाधाओं को पार करने के लिए मदद की आवश्यकता थी। अपनी पढ़ाई के प्रति आनंद के उत्साह, प्रश्नों को हल करने की उसकी क्षमता और सवाल पूछते समय उसकी दृढता ने उसके शिक्षकों को प्रभावित कर दिया। वे इस युवक की ओर ध्यान देने लगे, जिसकी संख्याओं के साथ विशेष दोस्ती थी और उसकी प्रतिभा का पोषण करने लगे।

देवी प्रसाद वर्मा जो पटना यूनिवर्सिटी में आनंद के प्रोफेसर थे, ने इस छात्र की प्रतिभा और क्षमता पर बहुत पहले ध्यान देना शुरू कर दिया था। ''वो उसका दृष्टिकोण था, जो उसे मेरे इतने करीब लाया।'' वर्मा याद करते हैं, ''वो बहुत विनम्र था, लेकिन हमेशा विभिन्न स्रोतों से नए प्रश्नों के साथ तैयार रहता था। उसके पास एक खोजपूर्ण दिमाग था, जो पत्रिकाओं और जर्नलों से परामर्श लेकर गणित के क्षेत्र में नई-नई चीजों की तलाश करता रहता था। एक ऐसा काम, जो हर नया छात्र नहीं करना चाहेगा।''

बिहार कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग (जो अब एन.आई.टी., पटना है) के प्रोफेसर मोहम्मद शहाबुद्दीन अब पटना में सेवानिवृत्त जीवन बिता रहे हैं; लेकिन उन्हें 1980 के दशक के अंत और 1990 के दशक के आरंभ का एक युवा छात्र याद है, जो नियमित रूप से उनके साधारण से घर के दरवाजे पर सवाल पूछने और शंकाओं का समाधान करने आया करता था। फुलवारी शरीफ के उपनगर में, जो गलियों और सड़कों की भूलभुलैया के रूप में जाना जाता है, एक घर तलाश करना कोई आसान काम नहीं था। लेकिन कई शामों

को जब प्रोफेसर साहब अपनी खिड़की से बाहर देखते तो दरवाजे पर शरमीली मुसकान के साथ एक युवक खड़ा दिखाई देता, जिसके चेहरे पर उम्मीद का भाव मुश्किल से छुपाया होता था।

''एक दस्तक मेरा ध्यान आकर्षित करती और सामने का दरवाजा खोलने पर मुझे वहाँ आनंद खड़ा दिखाई देता। मेरे लिए वो हैरानी की बात होती, क्योंकि मैं छात्रों को अपने घर आने के लिए कभी प्रोत्साहित नहीं करता था; बल्कि जब ऐसा पहली बार हुआ तो मैंने उसकी उपेक्षा कर दी थी।'' वे बताते हैं।

लेकिन आनंद ने हार नहीं मानी और अगली शाम वह फिर उनके दरवाजे पर था।

''मैं उससे दरवाजे के बाहर मिला। उसे उन प्रश्नों के बारे में कुछ पूछना था, जो मैंने छात्रों को दिए थे। मैंने उसे समझाया कि उन्हें कैसे करना था और उसे वापस भेज दिया।''

लेकिन यह एक ऐसे क्रम की शुरुआत थी, जो बहुत लंबे समय तक हर दूसरे दिन, और कभी-कभी प्रतिदिन दोहराया जाने वाला था।

''वो मेरे घर आता था।'' शहाबुद्दीन कहते हैं, ''और हम प्रश्नों के हल के बारे में दरवाजे के बाहर चर्चा करते थे। संतुष्ट होकर वो (आनंद) घर चला जाता था, कभी पैदल और कभी साइकिल से। फिर एक दिन उसकी दृढता और गणित के लिए उसकी भूख से प्रभावित होकर मैंने उसे घर के अंदर बुला लिया। तब से वो मेरे लिए मेरे परिवार के सदस्य की तरह है।''

प्रोफेसर शहाबुद्दीन इन घटनाओं को अत्यधिक गौरव के साथ सुनाते हैं, हालाँकि वे स्वीकार करते हैं कि उस समय उन्हें एहसास नहीं हुआ था कि यह असाधारण युवक दुनिया भर में धूम मचा देगा, लेकिन जो वे जानते थे, वह ये था कि उनके इस छात्र में सही मायनों में गणित का सच्चा शिष्य बनने के गुण मौजूद थे।

शुरुआती दिनों में दिल में सैकड़ों सवाल लिये आनंद बी.एन. कॉलेज में दाखिल हुए। क्लास का आभामंडल कुछ ऐसा था कि लगा यहाँ गणित के साथ जिंदगी के सवाल भी हल हो जाएँगे। वहाँ गणित के प्रोफेसर श्री बाल गंगाधर प्रसाद से मुलाकात हुई। क्या अंदाज था। सीधा व सटीक। प्रो. गंगाधर प्रसाद के पढ़ाने की शैली से आनंद बेहद प्रभावित हुए। वे प्रोफेसर से मिले, उनसे आग्रह किया कि वे उनके घर पढ़ाई के सिलसिले में आना चाहते हैं। लेकिन जवाब मिला—कॉलेज में ही उनसे सवाल पूछ लिया करें। इसके बाद एक दिन संयोग बना। कॉलेज के चपरासी कपिलजी ने आनंद को प्रोफेसर के घर का पता बताया। आनंद से रहा नहीं गया। वह सीधे प्रोफेसर के घर पहुँच गया। दरवाजे पर कॉल-बेल लगा था। दबा दिया। अंदर से आवाज आई—''कौन है?'' घबराए गले ने आनंद ने

कहा—“सर, मैं आनंद।” दरवाजा बाल गंगाधरजी ने ही खोला। अचरज से भरी आँखें लिये कहा—“आओ आनंद। कैसे हो?” जवाब में आनंद के हाथ उनके पैरों तक पहुँच गए। उन्होंने आनंद की लगन देखकर उन्हें गुरु ज्ञान दिया। यह भी बताया कि नंबर थ्योरी के लिए आनंद प्रोफेसर देवी प्रसाद वर्मा से मुलाकात करें। उनका यह सुझाव बहुत काम आया।

प्रो. बाल गंगाधर प्रसाद उन बीती यादों को आज भी अपनी आँखों में कैद किए बैठे हैं। वे कहते हैं—“आनंद की आँखों में एक अजीब सी ललक छलकती थी। वह पढ़ने में हर दिन एक नया प्रयोग करता था। थ्योरी से खेलता था। गणित के सवालों से खिलवाड़ करता था। वह इतना सटीक व तार्किक तरीके से अपने सवालों को हल करता था कि देखकर मन प्रसन्न हो जाया करता था। मुझे याद है कि वह नंबर गेम में कभी भी शामिल नहीं रहा। वह सवाल के पूरी तरह हल नहीं हो जाने तक उसे पूरी तरह माँजा करता था। एक विशेष गुण, जो उसे अन्य छात्रों से अलग करता था, वह यह कि वह अपनी विशिष्ट पाठ्य शैली को अपने तक ही सीमित नहीं रखता था, बल्कि अन्य छात्रों से उसे साझा भी करता था। और यही कारण है कि आनंद आज इस ऊँचाई तक पहुँचा है। मुझे आनंद पर बहुत गर्व है।”

□

छात्र के मुख से

नाम : चिरंजीव कुमार

नाम : चिरंजीव कुमार

सुपर 30 बैच : 2010

इंस्टीट्यूट और स्ट्रीम : कंप्यूटर साइंस और इंजीनियरिंग, आई.आई.टी. बी.एच.यू., वाराणसी।

वर्तमान जॉब : एडॉब सिस्टम्स

मैंने दसवीं तक की स्कूली शिक्षा अपने गाँव में पूरी की। मेरे पिताजी किसान हैं और मेरी माँ कपड़े सिलने का काम करती थीं, इसलिए मेरे माता-पिता मुझे सिर्फ प्राथमिक शिक्षा दिला पाने में सक्षम थे। चूँकि मेरा गाँव बाघमती नदी के निकट है, इसलिए वहाँ हर साल बाढ़ आ जाती थी और हमें कुछ महीने (मई से जुलाई) एक बाँध पर गुजारने पड़ते थे। मैंने बहुत मेहनत की और बिना किसी ट्यूशन या कोचिंग के दसवीं में 81.8 प्रतिशत अंक ले आया। मैं पटना साइंस कॉलेज में दाखिला लेना चाहता था। लेकिन वे इंटरमीडिएट के लिए छात्र स्वीकार नहीं कर रहे थे। मेरा सपना टूट गया और ऊपर से मेरे पास इंजीनियरिंग की किसी प्रवेश परीक्षा के लिए पैसे भी नहीं थे। मुझे सुपर 30 के बारे में पता चला और सौभाग्य से मेरा पहले ही प्रयास में चयन भी हो गया। मैं आनंद सर के पढ़ाने की शैली से बहुत रोमांचित हो गया। वे गणित के बहुत जटिल प्रश्न का हल 7 या 8 विभिन्न तरीकों के प्रयोग से निकालते थे और समाधान की व्याख्या अपने मशहूर कार्टून चरित्रों भोलू व रिक्की की मदद से करते थे। इस कठिन विषय को पढ़ाने की उनकी पद्धति असाधारण है और मैं उनका बहुत बड़ा प्रशंसक बन गया। सुपर 30 की सदस्यता और मार्गदर्शन ने मेरी बहुत मदद की, बिना एक पैसा लिये। और मैं पहले ही प्रयास में आई.आई.टी. बी.एच.यू. में कंप्यूटर साइंस (इंजीनियरिंग) स्ट्रीम के लिए चयनित हो गया। कुछ महीनों तक मैं विश्वास भी नहीं कर पा रहा था कि मैंने इतने अद्भुत वातावरण में शिक्षा प्राप्त की है। चार वर्षों में मैंने कंप्यूटर की सभी चालों, हैकिंग, मशीन की भाषाओं और तकनीकी दुनिया के विषय में सीखने पर ध्यान केंद्रित किया। कॉलेज के बाद मैंने एडॉब सिस्टम्स में काम करना शुरू किया। यहाँ मैं सॉफ्टवेयर के बुनियादी ढाँचे के निर्माण के लिए कोड लिखता हूँ, जिससे उसकी हेल्प वेबसाइट, help.adobe.com के सभी भौगोलिक स्थानों और अधिकांश भाषाओं में कुशल संचालन में मदद मिलती है। मेरा मानना है कि टेक्नोलॉजी दुनिया को बदल सकती

है और आनंद सर जैसे लोग, जो इसे संभव बनाने के मिशन पर हैं, वास्तव में असाधारण हैं।

3

एक अपूर्णीय क्षति

वर्ष 1991 की एक गरम दोपहर को आनंद गहरे विचारों में डूबा हुआ अपनी पुरानी एवन साइकिल पर बी.एन. कॉलेज से वापस लौट रहा था। चाँदपुर बेला तक की लंबी यात्रा में यातायात के जाम और निरंतर पीछा कर रहे धूल के बादलों के बीच आनंद के पास पटना के जीवन का निरीक्षण करने और अपनी खुद की स्थिति पर आत्मविश्लेषण करने के लिए पर्याप्त समय था। एक निजी स्कूल की बस के पीछे साइकिल चलाते हुए वह संपन्न परिवार के दमकते, प्रसन्नचित्त बच्चों को देखकर दुखी हो रहा था, जिन्हें शायद अपने स्कूल से मिले होमवर्क के अलावा किसी बात की चिंता नहीं करनी पड़ती थी।

जब उसके पिताजी ने 1988 में चाँदपुर बेला में दो कमरे का घर बनाया था, तब उस इलाके में सिर्फ एक प्राइमरी स्कूल था। 2012 में वो उदास होकर सोचने लगा। कुछ भी नहीं बदला था, सिवाय आबादी में वृद्धि के। चाँदपुर बेला का एकमात्र प्राइमरी स्कूल अभी भी बहुत तंग था। अपर्याप्त रोशनी और सीमित स्थान के साथ गिने-चुने कुरसी-टेबल थे, जिनसे काम नहीं चलता था और जहाँ इस विशेष स्कूल में ब्लैकबोर्ड की सुविधा थी, जिस पर अध्यापक पाठ समझा सकते थे। वहीं आए दिन चॉक खत्म हो जाना कोई असामान्य बात नहीं थी। स्कूल में कोई वास्तविक खेल का मैदान नहीं था। बस, स्कूल के सामने एक सँकरी सी गली थी, जिसका उपयोग बच्चे असली और काल्पनिक खेल खेलने के लिए करते थे। अध्यापकों को बहुत कम वेतन मिलता था; लेकिन वे उस मुश्किल वातावरण में उम्मीद पैदा करने का प्रयास करते रहते थे।

इलाके का एकमात्र हाई स्कूल 2-3 किलोमीटर दूर था और समुदाय के बाहर स्थित था। चाँदपुर बेला से वास्तव में वहाँ तक पहुँचनेवाले छात्रों में से कुछ ही होते थे, जो कभी स्नातक हो पाते थे। आस-पड़ोस में से अकेला आनंद ही था, जो इस समय पटना विश्वविद्यालय के बी.एन. कॉलेज का छात्र था। आनंद के आस-पड़ोस के अधिकांश लोगों के लिए शिक्षा उनकी प्राथमिकताओं में नहीं आती थी और इस बारे में निश्चित तौर पर आम स्वीकृति नहीं थी कि शिक्षा जीवन में आगे जाकर बड़े लाभ प्रदान कर सकती है।

सारी बातें आनंद को बहुत परेशान करती थीं। दो चीजें उसे निरंतर त्रस्त करती रहती थीं—एक तो आजीविका की चिंता और दूसरे उसके आसपास शैक्षिक अवसरों की कमी। उस समय जिस प्रकार वह खुद संगठित तरीके से सोचने और अपनी स्थिति को बेहतर

बनाने में सक्षम था, उसे वास्तव में लगता था कि दूसरे बच्चे भी गरीबी और बेरोजगारी के दुष्चक्र से बाहर निकल सकते हैं। बस, उन्हें उचित शिक्षा की आवश्यकता थी। घर के पास आते-आते उसके दिमाग में एक विचार जन्म लेने लगा था।

आनंद गणित जानता था। उसे अचानक एहसास हुआ और वह जानता था कि वह दूसरों को भी गणित अच्छी तरह समझा सकता है, जैसा कि पटना विश्वविद्यालय के उन कई सहपाठियों से स्पष्ट था, जो अपनी समस्याओं के समाधान के लिए उसकी मदद लेते थे। इस विचार की व्यावहारिकता और संभावनाओं के बारे में काफी देर गंभीरता से सोचने के बाद आनंद ने कुछ शुल्क के बदले छात्रों को गणित पढ़ाने का निर्णय लिया। वो गणित को समर्पित एक प्रकार का क्लब शुरू करना चाहता था, जहाँ छात्र आते और हाई स्कूल उत्तीर्ण करने जितनी गणित सीख लेते और फिर शायद कॉलेज भी जाते।

यह कल्पना के किसी भी कोने से एक मूल विचार नहीं था। आखिरकार, पटना में अनगिनत कोचिंग संस्थान फैले हुए थे, लगभग एक स्थानिक की तरह; लेकिन आनंद को जो खाई दिखी, वह उनकी तात्कालिक झुग्गी बस्ती में प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा था। आसपास के इलाकों के इच्छुक छात्रों को पढ़ाने में मदद करने के लिए वहाँ कोई ढंग के ट्यूटर्स उपलब्ध नहीं थे।

कुछ ऐसी ही कहानी पूरे बिहार की थी। दानापुर गाँव में, जहाँ वह कभी-कभी जाता था, आनंद एक परिवार को जानता था, जिसमें 12 वर्ष के जुड़वाँ बच्चे थे। दोनों लड़के रवि कुमार और अरविंद कुमार शायद ही कभी स्कूल जाते थे; क्योंकि उनके पिता शंभू राय को यह जरूरी नहीं लगता था। उनके लिए प्रतिदिन परिवार का पेट भरने और सिर छुपाने के लिए छत बनाए रखने की समस्या ज्यादा मायने रखती थी। न तो शंभू राय और न ही उनकी पत्नी कभी स्कूल गए थे और संभावना थी कि वे जीवन भर निरक्षर ही रहने वाले थे। उनके पास गायें थीं, जिनका दूध वे घर-घर जाकर बेचते थे और शंभू को लगता था कि उनके बेटों के लिए स्कूल जाकर समय बरबाद करने से बेहतर होगा कि वे पारिवारिक व्यवसाय सीख लें।

शंभू राय ने एक बार आनंद से कहा था कि उन्हें अपने बेटों को उस दिशा में प्रोत्साहित करने की आवश्यकता नहीं महसूस होती थी; जबकि वे स्वयं पूरे दिन आजीविका कमाने में व्यस्त रहते हैं। शंभू को उसकी साइकिल के दोनों ओर भारी, दूध से भरे एल्युमीनियम के डिब्बे लटकाए, ध्यान से संतुलन बनाए प्रतिदिन निकलते देखना पड़ोस का एक आम दृश्य था।

आनंद जानता था कि रवि और अरविंद अपने दिन बाहर खेलते हुए या गायें चराते हुए बिता देंगे और फिर एक दिन साइकिल की कठोर सीट पर बैठकर दूध बेचने की उनकी बारी आ जाएगी। इस अवसर को फिर अगली पीढ़ी के लिए स्थगित कर दिया जाएगा और

एक अच्छी शिक्षा द्वारा परिवार की आशाओं व महत्त्वाकांक्षाओं को आकार देने के प्रस्ताव में और देर हो जाएगी।

एक दिन, जब आनंद अपने परिवार के साथ नाश्ता करने बैठे, जो अधिकांश दिनों में किसी प्रकार का चीला और चटनी होता था तो उन्होंने अपने पिता से कहा, "चाँदपुर बेला और उसके आसपास कोई ढंग के शिक्षक नहीं हैं। मुझे लगता है कि मेरे पास इनमें से कुछ बच्चों को हमारे घर के पिछवाड़े पढ़ाने का अवसर है।" राजेंद्र प्रसाद ने उनका उत्साह बढ़ाया और उस दिन से उनके बीच किसी प्रकार का स्कूल खोलने के बारे में सक्रियता से चर्चा शुरू हो गई।

साइकिल से कॉलेज आते-जाते समय आनंद के दिमाग में सिर्फ एक स्कूल खोलने की बात घूमती रहती थी। उन्हें एहसास हुआ कि उन्हें किसी परिसर की आवश्यकता होगी, क्योंकि वे छात्रों को किसी भी स्थिति में अपने तंग घर के अंदर नहीं पढ़ा सकते थे। लेकिन फिर किराए के लिए पैसे कहाँ से आएँगे? कई बच्चों के पास फीस देने के लिए पैसे नहीं होंगे, खासतौर से शुरुआत में।

वैसे भी, पहला काम था इच्छुक छात्रों की तलाश करना। उन्हें अधिक दूर नहीं जाना पड़ा, क्योंकि उनके छोटे भाई के दो दोस्त मनीष प्रताप सिंह और रजनीश कुमार सीखने और जीवन में आगे बढ़ने के लिए उत्सुक थे। दोनों ही क्लर्कों के बेटे होने के नाते गरीबी के अभिशाप से अपरिचित नहीं थे और कड़ा परिश्रम करने के लिए तैयार थे। दो उत्साहित छात्र मिलने के बाद आनंद पढ़ाने के लिए एक जगह की तलाश में जुट गए। थोड़ी तलाश के बाद वे पड़ोस के एक जाने-पहचाने व्यक्ति राम नारायण सिंह को समझाने में सफल हो गए और उन्होंने पढ़ाने के लिए अपने घर में कुछ जगह इस्तेमाल करने की अनुमति दे दी। जब आनंद ने किराए के बारे में पूछा तो मकान मालिक ने कहा कि जब वे कुछ कमाने लगेंगे तो जो राशि उचित समझें, दे सकते हैं।

आनंद अभिभूत हो गए और उनकी बात को इस बात का संकेत समझा कि वे सही दिशा में जा रहे थे।

10 अगस्त 1992 को आनंद कुमार ने दो छात्रों और एक क्लासरूम के साथ अपना छोटा सा मैथ्स क्लब आरंभ किया। कक्षा गणित की चर्चा को समर्पित थी और आनंद ने कई महीनों तक सप्ताह में 3 से 5 दिन, 2 से 3 घंटे अपने छात्रों को ट्यूशन पढ़ाया। यहाँ तक कि कुछ ऐसे शिक्षक भी, जिन्होंने इस नवोदित गणितज्ञ को पटना विश्वविद्यालय में पढ़ाया था, उसकी कक्षा में समय देने लगे।

आनंद को सबसे ज्यादा आश्चर्य यह देखकर हुआ कि उनके दोनों छात्र सीखने के प्रति कितने उत्साही थे। उन्हें अकसर खुद को यह बात याद दिलानी पड़ती थी कि वे लगभग उसी की उम्र के थे, क्योंकि जिस प्रकार वे उसके कहे हर शब्द पर ध्यान देते थे, उससे बिल्कुल विपरीत संकेत मिलता था। मनीष और रजनीश हमेशा उस ज्ञान के लिए अत्यंत

आभारी रहते थे, जो उन्हें प्राप्त हो रहा था और हर उस चीज को स्पंज की तरह सोख लेते थे, जो आनंद और दूसरे शिक्षक उन्हें सिखाते थे। इसके परिणामस्वरूप उन्होंने बारहवीं कक्षा के गणित के पर्चे में बहुत अच्छा प्रदर्शन किया। जल्दी ही आनंद उन्हें उनकी आई.आई.टी. जे.ई.ई. परीक्षा के लिए पढ़ा रहे थे। वे तुरंत जान गए कि उन्हें कुछ करना है।

जल्दी ही उनके इस छोटे से मैथ्स क्लब के बारे में खबर फैलने लगी और उसके बाद आनंद ने देखा कि गणित के शिक्षक और कुछ अन्य छात्र सिर्फ गणित के प्रश्नों और समस्याओं के बारे में उनसे चर्चा करने के लिए वहाँ आने लगे। उनका छोटा सा क्लासरूम जल्दी ही कई लोगों के लिए इस विषय पर चर्चा करने का स्थान बन गया।

मनीष प्रताप सिंह ने गणित में स्नातक की डिग्री प्राप्त कर ली और बाद में एक इंजीनियरिंग कॉलेज की प्रवेश परीक्षा में भी बैठा; लेकिन उत्तीर्ण नहीं हो पाया। हालाँकि, वह यूनियन बैंक ऑफ इंडिया में नौकरी प्राप्त करने में सफल रहा और आज राँची, झारखंड में यूनियन बैंक की शाखा का मैनेजर है। आनंद के उसे ट्यूशन देने के निर्णय के बाद से जिस प्रकार उसके जीवन में बदलाव आया, उससे वह निस्संदेह बहुत खुश हैं।

अब मनीष उस छोटे से किराए के कमरे को प्रेमपूर्वक याद करता है, जिसमें गणित की कक्षाएँ चलती थीं। वो एक बहुत विनम्र शुरुआत थी, लेकिन उसे याद है कि उन मुश्किल दिनों में भी आनंद अपने दो छात्रों के स्कूल को अंतरराष्ट्रीय स्तर तक ले जाने की बात करते थे। उस समय मनीष ने नहीं सोचा था कि वह सपना आगे जाकर एक सफल, अद्भुत वास्तविकता का रूप ले लेगा। आनंद के भाई प्रणव को जानने के लिए आभारी मनीष को गर्व है कि वह आनंद कुमार के पहले दो छात्रों में से एक है और खुशी है कि स्कूल की स्थापना के समय वह मौजूद था।

दूसरा छात्र रजनीश कुमार उस समय 19 वर्ष का था। वो जानता था कि आनंद चाँदपुर बेला में एक छोटे से दो कमरे के मकान में अपने परिवार के साथ रहते हैं और उनके पास खुद के पैसे भी नहीं हैं। इसके बावजूद आनंद ने कभी उनसे किसी फीस की माँग नहीं की। वे उन्हें बहुत मामूली सी फीस देते थे और वह भी तब, जब उनके पास पैसे होते थे और वे हमेशा अपने शिक्षक की दया और जुनून के लिए आभारी रहते थे। रजनीश न सिर्फ उस असाधारण क्लब की शुरुआत का हिस्सा बनने से खुश था, बल्कि उस कम उम्र में भी वह जानता था कि आनंद उन सभी शिक्षकों से अलग थे, जिन्होंने अब तक उसे पढ़ाया था।

विषय को उनके लिए दिलचस्प बनाने के लिए आनंद गणित और वास्तविक जीवन के बीच संबंध दरशाते थे। यही चीज थी, जिसने इन दो युवा छात्रों को गणित की अवधारणाएँ सही मायनों में समझने में मदद की।

कक्षा 11 की परीक्षाएँ समाप्त होने तक रजनीश की गणित की भाषा और सिद्धांतों पर पकड़ काफी बेहतर हो गई थी। हालाँकि उसने प्रतिष्ठित आई.आई.टी. जे.ई.ई. के लिए प्रयास किया, लेकिन उसके भाग्य ने साथ नहीं दिया और उसका चयन नहीं हुआ। बाद में

उसने अर्थशास्त्र में स्नातक की डिग्री हासिल की और फिर कानून की पढ़ाई की। पटना हाई कोर्ट में कुछ समय वकालत करने के बाद वह एक बेहतर भविष्य की तलाश में मुंबई चला गया। अब वह एगॉन रेलिगेयर जीवन बीमा कंपनी में लीगल मैनेजर है।

एक गणितज्ञ थे, जिन्होंने आनंद को बहुत प्रभावित किया था और एक शिक्षक के रूप में आनंद की ख्याति बढ़ने के बाद भी वे उन्हें प्रभावित करते रहे, वो थे महान् गणितज्ञ श्रीनिवास रामानुजन। आनंद अपने हीरो के बारे में और अधिक जान पाने का कोई भी अवसर सामने आने पर उछल पड़ते थे। वे उनके कार्यों से बहुत प्रेरित थे और उन्हें एहसास था कि रामानुजन की जी.एच. हार्डी के साथ साझेदारी कितनी महत्त्वपूर्ण थी। आनंद ने अपने स्कूल का नाम 'द रामानुजन स्कूल ऑफ मैथमेटिक्स' रखने का निर्णय लिया। इस महान् भारतीय गणितज्ञ के सम्मान में, जिन्होंने शुद्ध गणित की दुनिया में ऐसी असाधारण अंतर्दृष्टि प्रस्तुत की थी, लेकिन दुर्भाग्य से सिर्फ 32 वर्ष की अल्पायु में उनका निधन हो गया था।

वर्ष 1993 में प्रवेश करते हुए मौखिक प्रचार के परिणामस्वरूप स्कूल में 40 छात्रों का नामांकन हो गया। उनके क्लासरूम में, जो 15 बाई 20 फीट का एक हॉल था, गिनती की बेंचें और डेस्क थे, लेकिन एक अच्छा ब्लैकबोर्ड था और ढेर सारी चॉक थी, सिर्फ वे छात्र जिनके पास साधन थे, स्कूल के मामूली फीस भरते थे, जो अन्य स्कूलों की फीस का दसवाँ भाग थी। शिक्षण का काम मुख्यतः आनंद करते थे और उनके भाई प्रणव स्कूल के प्रशासनिक पहलुओं को सँभालते थे। क्लासरूम का किराया भरना, कहने की आवश्यकता नहीं है, मुश्किल होता था; लेकिन मकान मालिक का समझपूर्ण रवैया उन शुरुआती दिनों में बहुत मददगार था। गनीमत थी कि कई छात्र नियमित रूप से फीस भर देते थे, जिसकी वजह से बकाया राशि कभी भी बहुत बड़ी नहीं होती थी; मकान मालिक और किराएदार के बीच सम्मान के स्तर में तेजी से वृद्धि होने लगी; क्योंकि मकान मालिक को एहसास था कि उनका किराएदार हर संभव कोशिश कर रहा है और किराएदार को एहसास था कि मकान मालिक उसे स्थापित होने का बहुत बड़ा अवसर दे रहा है।

जब आनंद को कुछ आय मिलनी शुरू हो गई, चाहे अस्थिर ही सही, तो उसने अपनी खुद की आगे की पढ़ाई के बारे में सोचना शुरू किया। वो फुटपाथ पर बिकनेवाली गणित की पुस्तकें खरीद लेता, जिनमें से अधिकांश रूसी या अमेरिकी लेखकों की होती थीं और रात भर बैठकर उन्हें ध्यान से पढ़ता। उसने कई प्रसिद्ध गणितज्ञों की जीवनियाँ भी पढ़ीं, जिनमें रामानुजन की जीवनी भी शामिल थी, जिसे वह प्रेरणा लेने के लिए बार-बार पढ़ता था। यह वो समय था, जब इंटरनेट की उपस्थिति आज की तरह सर्वव्यापी नहीं थी। टी.वी. पर भी कुछ खास नहीं होता था, और समाचार-पत्रों में भी आमतौर पर स्थानीय और राष्ट्रीय समाचार ही होते थे। इसलिए युवा आनंद के बुने अधिकांश सपने इन जीवनियों और अन्य पुस्तकों से ही उपजे थे। उसके दिमाग में एक विचार आकार लेने लगा था। उसकी

पढ़ी अधिकतर पुस्तकों में यूनिवर्सिटी ऑफ कैंब्रिज को उस उदार गॉडफादर का दर्जा दिया गया था, जिसने कई असाधारण प्रतिभाओं को उनकी सबसे बड़ी योग्यता की खोज करने में मदद की थी। आनंद गुप्त रूप से इस महान् संस्थान में शिक्षा प्राप्त करके अपनी एक अलग पहचान बनाने की गहरी इच्छा मन में सँजोने लगा, जैसा कि पहले भी कई महान् गणितज्ञ कर चुके थे।

इस बीच आनंद का छोटा भाई प्रणव वायलिन वादन का कोर्स करने बनारस हिंदू यूनिवर्सिटी चला गया, जहाँ एन. राजम गुरु-शिष्य परंपरा के अंतर्गत सिखाती थीं। इससे आनंद को अवसर मिल गया कि वह अपने भाई से मिलने जाए और बी.एच.यू. की सेंट्रल लाइब्रेरी की खोज करे। सेंट्रल लाइब्रेरी एक अमूल्य खजाना थी। आनंद ने गणित के कई जर्नल्स पढ़े, जिनकी लाइब्रेरी के पास सदस्यता थी। वह नोट्स बनाता और उन जर्नल्स में दिए गए कई प्रश्नों को हल करने की कोशिश करता और अकसर किसी-न-किसी सवाल में इतना डूबा रहता कि उससे छुटकारा पाने के लिए लाइब्रेरियन को बत्ती बंद करनी पड़ती। एक बार एक विश्व स्तरीय प्रश्न को हल करने की कोशिश में एक-एक पूरी नोटबुक को भरने के बाद कई पृष्ठों में काटा-पीटी करने के बाद दूसरे पृष्ठ पर दोबारा उसे हल करने का प्रयास करने में आखिर उसे एक समाधान मिल गया। वह कुछ ऐसा था जैसे आप अँधेरे में ठोकरें खा रहे हों और तभी अचानक कोई बत्ती जला दे!

आनंद ने अपने समाधान पर काम किया और उसे अंतिम रूप दिया और फिर उसे लिखना शुरू कर दिया। लेकिन उसके लेखन में कमी थी। उसमें काफी बचपना था। वो अपना समाधान प्रोफेसर डी.पी. वर्मा के पास लेकर गया, जो पटना साइंस कॉलेज में गणित विभाग के हेड (प्रमुख) थे। प्रो. वर्मा ने आनंद के काम को प्रकाशन योग्य बनाकर उसे बेहतर ढंग से प्रस्तुत करने में मदद की। कौशल अजिताभ, जो आनंद से 7 या 8 वर्ष सीनियर था, उस समय साचुसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी (एम.आई.टी.) से पी-एच.डी. कर रहा था। आनंद उनका बहुत सम्मान करता था और उसने अपने पेपर्स उनके पास समीक्षा के लिए भेजे। कौशल ने पेपर्स देखे और बारीकी से उन्हें संपादित किया। प्रो. वर्मा और कौशल दोनों ही उसके विचार की मौलिकता से अत्यधिक प्रभावित हुए और उन्होंने आनंद को प्रोत्साहित किया कि वह उन पेपर्स को प्रकाशन के लिए भेजे।

1993 में कई लंबे दिनों और जागती रातों के बाद युवा आनंद का एक मौलिक पेपर यूनिवर्सिटी ऑफ शेफील्ड के 'मैथमेटिकल स्पेक्ट्रम' नाम के एक प्रतिष्ठित जर्नल में प्रकाशित हुआ। पेपर का शीर्षक था—'हैप्पी नंबर्स' और उसमें नंबर थ्योरी (संख्या के सिद्धांत) के विषय में एक नया विचार रेखांकित किया गया था। उस पेपर ने अंतरराष्ट्रीय गणित परिदृश्य पर एक नए विचारक के आगमन का सूत्रपात भी किया।

अब जबकि आनंद एक होनहार गणितज्ञ के रूप में उभर रहा था तो रमेश शर्मा ने, जिनके घर में राजेंद्र प्रसाद पटना में पढ़ाई के दौरान रहे थे, उनका परिचय तिलक

दासगुप्ता से कराया। दासगुप्ता एक स्वतंत्र पत्रकार थे, जो उस समय पटना में रहते थे और गरीबी, बेरोजगारी और असमानता की स्थिति के बारे में लिखते थे। दासगुप्ता आनंद के जीवन पर सबसे बड़ा प्रभाव छोड़नेवाले लोगों में से एक थे। उन्होंने आनंद से आग्रह किया कि वह अपनी योग्यता और प्रतिभा के लिए एक ऊँचा उद्देश्य तलाश करें और अपने व्यक्तिगत लाभ के बारे में न सोचें।

आज भी जब आनंद को जीवन का कोई बड़ा निर्णय लेना होता है तो वह तिलक सर के पास जाते हैं। आनंद और उनकी पत्नी ऋतु अकसर तिलक दासगुप्ता के परिवार से मिलने कोलकाता जाते हैं। उनके रिश्ते की जड़ें इतनी गहरी हो चुकी हैं कि आज आनंद के जीवन के सर्वश्रेष्ठ पल वे होते हैं, जो वे तिलक सर के साथ बातें करते हुए बिताते हैं। ऐसा प्रभाव था उस व्यक्ति का, जिससे आनंद पहली बार 1993 में मिले थे।

आनंद के कुछ और पेपर्स प्रकाशित हुए, जिनमें से एक 'मैथमेटिकल गजट' में प्रकाशित हुआ और उनका आत्मविश्वास बढ़ता गया। इसी समय के आसपास तिलक दासगुप्ता के माध्यम से उनकी मुलाकात 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के पटना संस्करण के संपादक उत्तम सेनगुप्ता से हुई। आनंद में वास्तव में कोई खास बात थी, जैसा कि उनके प्रोफेसर डी.पी. वर्मा कहा करते थे। वे अपने पेशेवर कैरियर में सिर्फ दो वास्तविक जीनियसों से मिले थे। पहले थे—वशिष्ठ नारायण सिंह नाम के एक प्रतिभाशाली गणितज्ञ (जो 1993 के आसपास कई मानसिक आघातों से गुजरे थे और बाद में संस्थागत कर दिए गए थे) और दूसरे, उस समय उनके कॉलेज में पढ़ रहा एक युवा छात्र आनंद कुमार।

आनंद ने सेनगुप्ता से एक विशेष अनुरोध किया। वह उस प्रतियोगिता के विजेताओं के लिए आयोजित समारोह में सेनगुप्ता को सम्मानित अतिथि बनाना चाहते थे, जो उन्होंने अपने छात्रों को चुनौती देने के लिए रखी थी। सेनगुप्ता रामानुजन स्कूल के पीछे की कहानी से और इस बात से कि कैसे ये युवा छात्र खुद होनहार छात्रों को पढ़ाता था और कुछ से तो कोई शुल्क भी नहीं लेता था, बहुत रोमांचित थे। यह एक ऐसी दोस्ती की शुरुआत थी, जो जीवन भर जारी रहने वाली थी।

संपादक शुरू में उसका अनुरोध स्वीकार करने में हिचक रहे थे, क्योंकि—जैसा कि उन्होंने आनंद को बताया—वे स्कूल में गणितीय कौशल का चमकता उदाहरण नहीं हुआ करते थे और उन्होंने परीक्षा में इस विषय में सिर्फ 40 प्रतिशत अंक प्राप्त किए थे। लेकिन जितनी वे भविष्य में गणित के सिद्धांतों के बारे में लिखने के आनंद के लक्ष्य के बारे में बात करते गए, उतनी ही सेनगुप्ता की उनके समारोह में सम्मानित अतिथि बनने की इच्छा बढ़ती गई। जर्नल्स में प्रकाशित आनंद के पेपर्स देखने के बाद सेनगुप्ता ने आनंद से कैंब्रिज में आवेदन करने का आग्रह किया। अब तक कैंब्रिज में जाना उसकी एक गुप्त आकांक्षा थी, खुली आँखों से देखा एक सपना था और अब एक वरिष्ठ संपादक गंभीरता से उसे वहाँ आवेदन

करने की सलाह दे रहे थे। आनंद हिचक रहा था, लेकिन उम्मीद जैसी किसी चीज ने उसे इस बात के लिए मना लिया।

अप्रैल 1994 में आनंद ने कैंब्रिज में दाखिले के लिए आवेदन पत्र भरा, अपने प्रकाशित पत्र संलग्न किए और आवेदन शुल्क या किसी भी प्रकार के शुल्क के मद में एक पैसा दिए बिना उसे भेज दिया। बाद के दिनों में वह उस आवेदन को भूलने की कोशिश करने लगा, क्यों भेजा मैंने वो? वहाँ के सब प्रोफेसर लोग बैठकर मुझ पर हँस रहे होंगे। रात को बिस्तर पर जागते हुए आनंद सोच रहा था। कैंब्रिज जाएँगे जनाब, उसने अपने आपको ताना दिया।

'रामानुजन स्कूल ऑफ मैथमेटिक्स' की लोकप्रियता बढ़ती जा रही थी और आनंद अपने छात्रों के साथ और अधिक समय बिताने लगे थे। अब स्कूल में केमिस्ट्री और फिजिक्स भी पढ़ाई जा रही थी और छात्रों को आई.आई.टी. जे.ई.ई. की प्रवेश परीक्षा के लिए कोचिंग दी जा रही थी। यह उल्लेखनीय था कि यह सब बिना किसी विज्ञापन या प्रचार के हो रहा था—एक ऐसे समय पर, जब पटना कोचिंग संस्थानों से वस्तुतः अटा पड़ा था। एक सुबह, जब आनंद कॉलेज जाने के लिए तैयार हो रहे थे तो उन्होंने अपनी माँ को चिल्लाते सुना—''आनंद! आनंद! कैंब्रिज का लेटर आया है!'' जयंती देवी एक हाथ में पत्र और दूसरे हाथ में बेलन लिये उसकी ओर भागी चली आ रही थीं। राजेंद्र प्रसाद भी देखने चले आए कि इतना हंगामा किस बात पर हो रहा था। आनंद ने पत्र खोला और अपने पिता के हाथ में दे दिया। आनंद कुमार को कैंब्रिज यूनिवर्सिटी में स्वीकार कर लिया गया था!

राजेंद्र प्रसाद जल्दी से बाहर गए और मीना प्रसाद और उसकी पत्नी को पुकारने लगे। कुछ ही देर में वहाँ एक भीड़ जमा हो गई, जो समझने की कोशिश कर रही थी कि क्या खबर आई थी। आनंद कैंब्रिज जाएगा! कैंब्रिज! पता नहीं कहाँ से लड्डू भी आ गए और बँटने लगे। कुछ बच्चों ने गाना शुरू कर दिया, आनंद भैया, मान गए! आनंद होंठों पर उदास मुसकान लिये इस जश्न से कुछ दूर खड़े थे। वे नहीं जानते थे कि उन्हें खुश होना चाहिए या दुखी। राजेंद्र प्रसाद ने आनंद को एक कोने में उदास खड़े देखा तो वे उनके पास आ गए, क्या बात है, बेटा? यह तो बहुत अच्छी खबर है। इस मोहल्ले के लोगों ने तो कैंब्रिज का नाम भी नहीं सुना है, जाना तो दूर की बात है। तुम क्या सोच रहे हो?''

''पिताजी, फीस बहुत ज्यादा है। हम किसी भी तरह इतने पैसों का इंतजाम नहीं कर सकते, जिससे मैं अपने इस बेवकूफी भरे सपने को पूरा कर सकूँ।''

''पागल हो गए हो क्या? तुम जानते हो, इसका मतलब क्या है? हम सब जानते थे कि तुम्हारे अंदर कोई विशेष प्रतिभा है। तुम्हारे लिए यही एक रास्ता है, जिससे तुम इस नरक से बाहर निकलकर कुछ बड़ा हासिल कर सकते हो। क्या तुम्हें लगता है कि रामानुजन ने पैसों की कमी को अपने रास्ते की रुकावट बनने दिया था? चिंता मत करो, जब तक तुम्हारा पिता जीवित है, तुम्हें पैसे जैसी मामूली बातों के लिए परेशान होने की जरूरत नहीं

है। तुम अपनी पढ़ाई पर ध्यान दो, बेटा।'' आँसू भरी आँखों से आनंद ने अपने पिता को गले लगा लिया।

राजेंद्र प्रसाद को वे सर्दियाँ याद आ रही थीं, जो पटना में पढ़ने के दौरान उन्होंने सिर्फ सूती कपड़ों में गुजारी थीं। उन्होंने अपने मन में तय कर लिया कि उनके बेटे के पास इंग्लैंड में पर्याप्त गरम कपड़े होने चाहिए। उन्होंने अपना कोट भी निकाल लिया, जो उनके पास एकमात्र अच्छा कोट था और उसे आनंद के नाप का करवा दिया।

इन सब तैयारियों के बीच, बढ़ती संख्या में रिश्तेदार और मित्र आनंद को उनकी सफलता के लिए शुभकामनाएँ देने आ रहे थे। उनके जाने का समय निकट आने पर वातावरण में उत्तेजना साफ झलकने लगी थी और तभी नियति ने एक घातक प्रहार किया।

23 अगस्त, 1994 को राजेंद्र प्रसाद झपकी ले रहे थे। वे अकसर जमीन पर ही सो जाते थे और उस बरसात की रात को भी वे परिवार को उसी जगह मिले, जब उन्होंने उनकी कठिनाई से चलती साँसों की आवाज सुनी। आनंद और उसकी माँ दौड़कर बीमार राजेंद्र की सहायता के लिए पहुँचे, जो बहुत कष्ट में थे और मुश्किल से साँस ले पा रहे थे। आनंद तेज बारिश में बाहर भागे, ताकि किसी को मदद के लिए बुला सकें। लेकिन चाँदपुर बेला में कोई डॉक्टर नहीं था। एक कंपाउंडर, जिसे सब 'डॉक्टर भगत' कहते थे, शांति कुटीर से करीब 500 मीटर की दूरी पर रहता था। आनंद कंपाउंडर के घर पहुँचे और उससे फौरन साथ चलने की विनती की। डॉक्टर भगत आनंद के साथ शांति कुटीर आ गए। उन्होंने राजेंद्र प्रसाद की जाँच करके बताया कि उनकी स्थिति गंभीर थी और उन्हें तुरंत अस्पताल ले जाने की आवश्यकता थी, क्योंकि उनका उपचार घर पर हो पाना संभव नहीं था। वास्तव में कंपाउंडर को यकीन था कि राजेंद्र प्रसाद का निधन हो चुका था; लेकिन वे उस परिवार को यह अंतिम सूचना नहीं दे सकते थे, जो इतनी उम्मीद भरी निगाहों से उन्हें देख रहा था। उन्होंने पुष्टि के लिए उन्हें डॉक्टर के पास ले जाने का आग्रह किया। वहाँ कोई टैक्सी उपलब्ध नहीं थी, इसलिए उन लोगों ने उन्हें धीरे से एक ठेले पर लिटाया और आनंद अपने पिता के औंधे शरीर को धकेलते हुए नजदीकी अस्पताल की ओर दौड़ पड़े। बाहर अभी भी बारिश हो रही थी।

खराब दृश्यता, बारिश और गड्ढों से भरी सड़क ने यात्रा को और अधिक दर्दनाक व हृदय-विदारक बना दिया था।

अंत में, जब वे पटना मेडिकल कॉलेज के इमरजेंसी कक्ष में पहुँचे तो रात हो चुकी थी। उनके सामने एक निराशाजनक दृश्य था। ऑर्डरली इधर-उधर घूम रहे थे और बुरी तरह भीगे आनंद एवं ठेले पर पड़े उसके पिता की ओर कोई ध्यान नहीं दे रहा था।

''कृपया मेरी मदद करिए। मेरे पिताजी साँस नहीं ले रहे हैं। उन्हें बचा लीजिए। भगवान् के लिए... मैं विनती करता हूँ।''

जब कोई मदद नहीं मिली तो आनंद के अंदर एक अजीब सी क्रोध-मिश्रित लाचारी पैदा हो गई। आक्रामक हो गए, चीखने लगे और अस्पताल के स्टाफ को गालियाँ देने लगे। उसके बाद भी उनके पिता की मदद करने के बजाय स्टाफ ने पुलिस को बुला लिया।

वह एक दिल तोड़ने वाला दृश्य था। एक जवान लड़का, जिसने कैंब्रिज में पढ़ने का सपना देखा था, जिसे अभी भी अपने पिता के जीवित होने की उम्मीद थी, पुलिस द्वारा घसीटा जा रहा था; क्योंकि वो पागलों की तरह चिल्ला रहा था।

अब तक पटना मेडिकल कॉलेज के अंदर और बाहर मिलाकर लगभग 100 लोग हो गए थे। जिन्होंने आनंद को देखा था, उन्होंने आगे आकर पुलिस को सारी बात समझाई और आनंद को छोड़ दिया गया। डॉक्टरों ने उनके पिता की जाँच की और उन्हें मृत घोषित कर दिया।

घर वापसी की यात्रा और अवसादपूर्ण थी। सब लोग सुबह होने का इंतजार कर रहे थे और इतने सदमे में थे कि समझ नहीं पा रहे थे, क्या हुआ था। आनंद की दादी शांति देवी देवदहा में थीं और रात को ही किसी को मोटरसाइकिल से उन्हें लाने के लिए भेज दिया गया। हालाँकि किसी ने उन्हें बताया नहीं कि घर में कौन सी बुरी खबर उनका रास्ता देख रही थी।

शांति देवी को कोई नहीं सँभाल पा रहा था। वे एक बेटे को पहले ही खो चुकी थीं और दूसरे को खो देना उनके लिए बहुत बड़ा झटका था। वे अपने बाल नोच रही थीं, छाती पीट रही थीं और लगातार रो रही थीं। उनका दर्द कम करने के लिए कोई कुछ नहीं कर सकता था।

कुछ ही दिनों पहले जो लोग उन्हें बधाई देने आए थे, अब उनके पास शोक प्रकट करने आ रहे थे।

श्मशान भूमि पर आनंद सबकुछ बेसुध होकर कर रहा था। उसने सारे कर्मकांड पूरे किए, जो उसके लिए बिल्कुल नए और बहुत ही कष्टप्रद थे। जब मुखाग्नि देने का समय आया तो वो फूट-फूटकर रो पड़ा। लेकिन गरीबों को तो शांति से शोक प्रकट करने की भी अनुमति नहीं होती। पंडित ने आनंद से पैसों की माँग की, जैसी कि चिता को अग्नि देने से पहले रस्म होती है। पहले तो अपने दुःख में आनंद समझ नहीं पाया कि उसे क्यों रोका जा रहा है, फिर जब उसे समझ में आया कि उससे पैसे देने की अपेक्षा की जा रही है तो उसके अंदर फिर वही क्रोध उबलने लगा, जो अस्पताल में उबला था। प्रणव को भी गुस्सा आ रहा था; लेकिन वह अपने भाई को समझाने की कोशिश करने लगा, "जालिम, सब जालिम हैं।" आनंद पीड़ा से चीखने लगा।

श्मशान भूमि खचाखच भरी थी। बहुत से लोग देवदहा से भी आए थे, जिनमें राजेंद्र प्रसाद के डाक विभाग के सहकर्मियों के अलावा वहाँ के पड़ोसी भी शामिल थे। ऐसा लग रहा था कि किसी स्थानीय नेता या मंत्री जैसे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति का निधन हुआ हो। सच तो

यह था कि राजेंद्र प्रसाद एक ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने कभी एक मक्खी को भी चोट नहीं पहुँचाई थी और सभी लोग उन्हें बहुत प्यार व सम्मान देते थे। पिछले कई वर्षों में उन्होंने अनगिनत लोगों की सहायता की थी और बदले में कभी कोई अपेक्षा नहीं की। वहाँ पंडितजी थे, जिनका खूबसूरत बेटा लापता हो गया था और उसे ढूँढना राजेंद्र ने अपना व्यक्तिगत मिशन बना लिया था। वो जवान लड़का एक ट्रक से कुचले जाने के बाद मृत पाया गया था। वहाँ पासवान मौजूद थे, जो आज भी आनंद को यह बताने का कोई अवसर नहीं छोड़ते कि उनके पिता ईश्वर स्वरूप थे। पासवान का बेटा दुखहरण एक मजदूर है, जो काम ढूँढने के लिए बाहर जाया करता था। एक बार जब कई दिनों तक उसकी कोई खबर नहीं मिली तो पासवान ने उसका पता लगाने में राजेंद्र प्रसाद की सहायता माँगी। पैसे और साधन न होने के बावजूद राजेंद्र उसकी मदद करने के लिए तैयार हो गए। लोगों से पूछताछ करते और संकेतों का अनुसरण करते हुए वे बनारस पहुँचे, जहाँ उन्होंने देखा कि दुखहरण का एक हाथ गायब है। उन्हें यह जानकर दुःख हुआ कि उसका मालिक उसे गाँव वापस नहीं जाने दे रहा था, क्योंकि उसे डर था कि निर्माण स्थल पर हुए इस हादसे के कारण कोई मुसीबत खड़ी हो सकती थी। अंत में राजेंद्र दुखहरण को गाँव वापस लाने में सफल रहे।

यह किस्सा विशेष रूप से इसलिए बताने योग्य है, क्योंकि आनंद को अपने पिता की थोड़ी-बहुत प्रवृत्ति विरासत में मिली लगती है। यदि आज वे गरीबों के लिए काम कर पाते हैं और व्यक्तिगत लाभ के बारे में नहीं सोचते तो इसलिए, क्योंकि उन्होंने बचपन से इस प्रकार का बड़ा दिल देखा है। राजेंद्र को इस बात की कोई परवाह नहीं थी कि उनके पास लोगों की मदद करने के लिए पैसे नहीं थे या उन्हें ऐसा करके कोई प्रसिद्धि या धन नहीं मिलनेवाला था। उन्हें नहीं लगता था कि एक बूढ़ी औरत की, जिसके साथ उनका कोई संबंध नहीं था, अपने घर में देखभाल करके वे कोई बड़ा काम कर रहे थे। अपनी युवावस्था में वे उसके साथ समय बिताते थे और उसकी सभी आवश्यकताओं का ध्यान रखते थे; क्योंकि वह बिस्तर से नहीं उठ सकती थी। उस माहौल में भी, जहाँ जाति और पंथ अत्यधिक महत्त्व रखते थे, उन्होंने घर के सामने रहनेवाली दूसरी जाति की एक गूँगी औरत के साथ संपर्क स्थापित करने के लिए एक सांकेतिक भाषा विकसित की थी। वे इन मतभेदों से ऊपर उठकर इनसानों को उनके वास्तविक रूप में देख पाने में सक्षम थे—अनिवार्य रूप से एक समान।

उस दिन घर लौटने के बाद आनंद अपने भाई के बगल में, जमीन पर लेटे हुए थे और तभी उन्हें अंदर लटके उस कोट की एक झलक दिखी, जो उनके पिता ने उन्हें दिया था। एक झटके के साथ आनंद को एहसास हुआ कि उन्हें वो उपहार मिले 24 घंटे से भी कम समय बीता था। उन्होंने कसम खाई कि वे तब तक उस कोट को नहीं पहनेंगे, जब तक वे उसके योग्य नहीं बन जाते।

छात्र के मुख से

नाम : निधि झा

सुपर 30 बैच : 2013-14
इंस्टीट्यूट और स्ट्रीम : सिविल इंजीनियरिंग, इंडियन स्कूल ऑफ माइंस
वर्तमान पेशा : छात्र

मैं इस समय 18 वर्ष की हूँ और जब यह सब शुरू हुआ, तब 16 वर्ष की थी। आई.आई.टी. जे.ई.ई. : मेरा बड़ा सपना। मैंने सुपर 30 और आनंद सर के आकर्षण के बारे में सुना था और जिस वर्ष मैंने जे.ई.ई. की तैयारी के लिए ड्रॉप किया, उस वर्ष मुझे यह अनुभव करने का मौका भी मिल गया। मैं मूल रूप से वाराणसी की रहनेवाली हूँ और इस समय इंडियन स्कूल ऑफ माइंस (आई.एस.एम.), धनबाद में पढ़ रही हूँ, एक संस्थान, जो आई.आई.टी. में परिवर्तित होने की प्रक्रिया में है।

मैं चार बहनों और एक भाई के परिवार का हिस्सा हूँ। मेरे पिताजी एक किराए का ऑटोरिक्शा चलाते हैं और मेरी माँ गृहिणी हैं। जैसा कि हम जानते हैं, शिक्षा इस समय सबसे बड़ा बाजार है और कोचिंग बहुत महँगी होती है; लेकिन सुपर 30 मेरी मदद के लिए आगे आया। आनंद सर हम सबके लिए एक निरंतर प्रेरणा रहे हैं, जब भी कोई निराश महसूस करता, वे ही उसका मनोबल बढ़ाने आते। वे मेरे जीवन का आदर्श हैं। उन्हीं की वजह से मैं पूरे वर्ष अच्छे से रहने का साहस जुटा पाई। उनका परिवार भी, खासतौर से प्रणव सर, बहुत सहायक है और उन्होंने हमेशा हम सब को अपने परिवार के सदस्यों की तरह समझा है।
मैं यह भी कहना चाहूँगी कि मेरा जीवन उस व्यक्ति का ऋणीदार है और मैं सुपर 30 और आनंद सर को अपने जीवन का अभिन्न और विशेष हिस्सा समझती हूँ।

4

पापड़वाला लड़का

शांति कुटीर में छाए दुःख के अँधेरे से बाहर निकलना परिवार के लिए मुश्किल था। आनंद के मित्र और रिश्तेदार उन पर कैंब्रिज जाने के लिए धन जुटाना जारी रखने के लिए दबाव डाल रहे थे। आनंद अपने मित्र उत्तम सेनगुप्ता के पास गए, जिन्होंने 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के माध्यम से उसकी बात लोगों तक पहुँचाने में मदद की। पटना यूनिवर्सिटी से एक हिंदी के प्रोफेसर आगे आए और उन्होंने पटना में एक मंत्री के साथ उसकी मुलाकात तय कर दी। मंत्री का रवैया सकारात्मक था और उन्होंने अगले दिन सुबह 11 बजे आनंद को मिलने बुलाया।

आनंद समय से आ गए, लेकिन उन्हें गेट पर रोक दिया गया।

''मंत्री महोदय ने मुझे 11 बजे मेरी कैंब्रिज की योजना के बारे में बात करने बुलाया है।'' आनंद ने समझाया।

काफी पूछताछ के बाद उन्हें अंदर जाने की अनुमति मिल गई और फिर उन्हें लॉबी में इंतजार करने के लिए कहा गया। आधा घंटा और बीतने के बाद उन्हें एक बड़े से कमरे के अंदर भेज दिया गया। कमरे में प्रवेश करने पर आनंद हैरान रह गए। उन्होंने अपेक्षा की थी कि अकेले मिनिस्टर साहब से बात होगी, लेकिन वहाँ तो बहुत से नेता नुमा लोग बैठे थे और सब जोर-जोर से बोलते हुए किसी राजनीतिक चर्चा में लगे हुए थे।

''आओ आनंद, आओ। बैठो, बैठो बेटा।'' मिनिस्टर साहब ने मुसकराकर आनंद का स्वागत किया और कमरे के एक कोने में रखी कुरसी पर बैठने का संकेत किया। आनंद को लगा कि मिनिस्टर साहब उससे थोड़ी देर में बात करेंगे, क्योंकि अभी महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर चर्चा हो रही थी।

पहले तो उसने अगोचर होने की कोशिश की; लेकिन फिर हवा में उड़ते वाक्य उसके कानों में पड़ने लगे।

''ये सीट उसे नहीं देनी चाहिए. बल्कि हमें ये सीट...''

''हाँ-हाँ, उसके पास बहुत बड़ा जाति-आधारित वोट बैंक है। वो बेहतर उम्मीदवार है।''

आनंद बैठे हुए सब सुन रहे थे और जो सुन रहे थे, उस पर उन्हें विश्वास नहीं हो रहा था। मैं गणित के समीकरणों पर अपना समय बिताता हूँ, लेकिन यहाँ तो नेता लोग ऐसे जटिल जाति और संप्रदाय के समीकरणों पर मंथन कर रहे हैं! आनंद हैरान रह गए।

उन्होंने 15-20 मिनट इंतजार किया और फिर विनम्रता से मंत्रीजी का ध्यान अपनी ओर खींचा।
‘‘सर, आपने मेरी कैंब्रिज जाने की योजना के बारे में बात करने के लिए मुझे बुलाया था...’’
‘‘हाँ, बिल्कुल। मैं उन सबको बुलाता हूँ, जो कड़ी मेहनत से पढ़ते हैं और राज्य के हित के बारे में सोचते हैं। मैं उनकी इज्जत करता हूँ और उन्हें प्रोत्साहित करता हूँ।’’ मिनिस्टर साहब ने अपनी बाँहें उठाते हुए बुलंद आवाज में कहा और एक बार फिर अपना ध्यान उस अभियान प्रबंधन की ओर मोड़ दिया, जिस पर नेता लोग चर्चा कर रहे थे।
आनंद घबराए हुए सोच रहे थे, मिनिस्टर साहब पैसे के विषय में मेरा संकेत नहीं समझ रहे हैं। शायद मुझे सीधे-सीधे बात कर लेनी चाहिए।
‘‘जी सर,’’ आनंद ने एक बार फिर उनकी चर्चा में बाधा डाली, ‘‘लेकिन जैसा कि प्रोफेसर साहब ने आपसे कहा था, मुझे कुछ आर्थिक सहायता की जरूरत है।’’
‘‘हाँ, मैंने पैसे से सहायता की बात की थी, लेकिन पैसे के चक्कर में अच्छे-अच्छे लोग बरबाद हो जाते हैं। पैसे के पीछे मत भागो। अच्छे कर्म करते रहो, तुम्हें सबकुछ मिल जाएगा’’ और एक बार फिर वे अपनी राजनीतिक चर्चा में मशगूल हो गए।
लगभग 15 मिनट और बीत जाने के बाद आनंद ने सीधे-सीधे कह दिया, ‘‘सर, बुरा न मानें; लेकिन मुझे कैंब्रिज जाने के लिए कुछ पैसों की सख्त आवश्यकता है।’’
‘‘हाँ, जरूर जाओ, अमेरिका जाओ, लंदन जाओ, जापान जाओ, फ्रांस जाओ, दुनिया के बड़े-से-बड़े संस्थानों में जाओ। मेहनत से पढ़ाई करो! रात-दिन एक कर दो! दिखा दो, बिहार की मिट्टी में कितनी ताकत है! लेकिन अपनी जड़ को कभी मत भूलना और फिर बुद्ध और महावीर की इस धरती पर वापस लौट आना। मैंने तुम्हें यही कहने के लिए बुलाया था। भूलना मत, बेटा, तुम्हारे देश को तुम्हारी जरूरत है।’’
आनंद समझ गए कि वहाँ से उन्हें कोई ठोस मदद नहीं मिलनेवाली थी और वहाँ से चले आए।
आनंद मिनिस्टर के बँगले से बाहर निकले तो वह काफी उदास दिख रहे थे। बँगले के दूसरी ओर की सड़क पर उन्होंने एक ठेले पर चाय की दुकान देखी। जेबें टटोलने पर उन्हें कुछ पैसे मिल गए। उन्होंने एक कप चाय पीते हुए अपने विचारों को संगठित करने का फैसला किया। चायवाले ने हाथ में प्रमाण-पत्रों का एक बंडल थामे सिर पकड़कर बैठे युवक को देखा तो उससे पूछा, ‘‘क्या हुआ? किस काम से गए थे मिनिस्टर साहब के पास? नौकरी के लिए?’’
निराश और थके हुए आनंद ने सहानुभूति दिखा रहे अजनबी को पूरी कहानी सुना दी।
‘‘पैसे? किस बेवकूफ ने तुम्हें यहाँ भेजा? ये लोग पिछले चार महीनों से मेरी चाय उधार पी रहे हैं, लेकिन अब तक पैसे नहीं चुकाए और तुम इनसे आर्थिक मदद की उम्मीद रखते हो?

ये लोग किसी काम के नहीं हैं। अपने सपने को भूल जाओ और कहीं नौकरी ढूँढ़ लो।''
आनंद अपने चाय के कप को घूरता हुआ चायवाले के शब्दों पर गहराई से विचार करने लगे।

आनंद निराश हो गए। जब उनके पिता उनके साथ थे, तब भी उन्हें ऐसी हताशाओं का सामना करना पड़ा था। कुछ लोगों ने उनके पिता को एक ऐसे धार्मिक संगठन के बारे में बताया था, जो कुछ छात्रों को प्रशिक्षण के लिए इंग्लैंड भेजता है और उनके सारे खर्च वहन करता है। यह सुनकर पिता-पुत्र उस प्रक्रिया के बारे में और जानकारी प्राप्त करने के लिए उस संगठन के दफ्तर में गए थे। पहले तो उन लोगों ने कहा कि आनंद को उनका धर्म स्वीकार करना पड़ेगा, फिर अपना नाम बदलना पड़ेगा और कुछ कानूनी औपचारिकताएँ पूरी करनी पड़ेंगी। फिर, उन्होंने कहा, ''आप हमारे पास अपने आवेदन के साथ आइएगा।''

आमतौर पर कहा जाता है कि बिहार और उत्तर प्रदेश जातिवाद में घुसे हुए हैं। यहाँ की पूरी राजनीति जाति-आधारित है और वोट बैंक अत्यंत महत्त्वपूर्ण होते हैं। इसलिए कुछ लोगों ने राजेंद्र प्रसाद को उनकी जाति के नेता के पास जाने का सुझाव दिया, इस आश्वासन के साथ कि वे जरूर मदद करेंगे। इस नेता के साथ उनकी भेंट काफी सफल रही और नेताजी ने कहा कि वे दो-चार दिनों में पैसों की व्यवस्था करवा देंगे। राजेंद्र प्रसाद और आनंद बेहद खुश थे।

दो दिन बाद वे फिर नेताजी से मिलने गए।

''हाँ, पैसों की व्यवस्था हो रही है। आपको अपने बेटे की शादी एक बहुत संपन्न आदमी की बेटी से करनी पड़ेगी। चिंता मत करिए, वे अपनी ही जाति समाज के हैं। पैसे आपको दहेज के रूप में मिल जाएँगे।''

उदास मन से राजेंद्र प्रसाद अपने बेटे को लेकर वहाँ से चले आए।

पिता की मृत्यु के बाद आनंद को एक ऐसे व्यक्ति का पत्र मिला, जिसने उनके बारे में 'द हिंदू' में पढ़ा था। उसने बताया कि वह दिल्ली का एक अमीर व्यापारी था और आनंद को मिलने के लिए अपने घर बुलाया। आनंद ने खुद के पैसे खर्च करके एक सामान्य श्रेणी का टिकट लिया और दिल्ली रवाना हो गए।

सफदरजंग एन्क्लेव पहुँचने पर उनका गर्मजोशी से स्वागत हुआ, चाय दी गई और फिर उस व्यापारी के साथ एक संक्षिप्त, लेकिन उत्साहजनक मुलाकात हुई। वापस लौटने के बाद उन्होंने दिल्ली के उस व्यापारी को कई बार फोन किया; लेकिन दुःखद रूप से सारे फोन कॉल व्यर्थ गए।

''जब आपको वास्तव में मदद की जरूरत होती है तो कोई आपकी मदद के लिए आगे नहीं आता। ये सारे स्वयंसेवी संगठन, एन.जी.ओ., सबके पोल खुल जाते हैं। ये सिर्फ उन लोगों

की मदद करना चाहते हैं, जो इनका प्रचार करवा सकते हैं।'' आनंद कड़वाहट के साथ सोच रहे थे।

उत्तम सेनगुप्ता ने लालू प्रसाद यादव से बात करके एक बार और आनंद की मदद करने का प्रयास किया। आनंद उनसे मिलने गए, लेकिन उनके सचिव द्वारा रोक दिए गए। सचिव ने उनसे मुलाकात का उद्देश्य एक कागज पर लिखने के लिए कहा और सूचना दी कि लालूजी उपलब्ध नहीं थे। धीरे-धीरे यह स्पष्ट होता जा रहा था कि कैंब्रिज जाने की उनकी उम्मीद उसके पिता के साथ ही खत्म हो गई थी।

जयंती देवी रोज आनंद को बिना किसी सफलता के घर लौटते देखतीं तो उनका दिल और बैठ जाता। डाक कार्यालय से मिलनेवाली मामूली सी पेंशन से मेज पर खाना लगाने के लिए उन्हें संघर्ष करना पड़ता था। लेकिन इसके बावजूद वे आनंद को उम्मीद न छोड़ने के लिए समझाती रहती थीं। एक शाम जब आनंद घर लौटे तो उन्होंने उनसे कहा, ''मैंने तय कर लिया है। तुम मेरे यह गहने बेच दो और जो भी पैसे मिलें, ले लो। तुम और प्रणव मेरे असली गहने हो। मैं इन बेकार धातुओं का क्या करूँगी?'' आनंद का दिल भर आया और उन्होंने कहा, ''पागल मत बनो, माँ। इन धातुओं से कुछ नहीं मिलनेवाला है। इनकी कीमत सिर्फ भावनात्मक है। इन्हें बेचकर भी कैंब्रिज जाने का खर्च नहीं निकल सकता। चलो, खाना खाते हैं और कुछ देर के लिए इन सब बातों को भूल जाते हैं।'' लेकिन जब वे खाना खाने बैठे तो मेज पर सिर्फ रोटियाँ थीं। मासिक खर्च के पैसे खत्म होते जा रहे थे। इसके अलावा, उन कुछ मामलों के विपरीत जब एक युवा मौत के मामले में सरकार मुआवजा देती है, यह बात सामने आई कि राजेंद्र प्रसाद ने अन्य ऋणों के अलावा घर के निर्माण के लिए एक सहकारी ऋण भी लिया था। परिवार को 18,000 रुपए की राशि चुकानी थी। यही वह समय था, जब आनंद ने अपने कैंब्रिज के सपने को दफनाकर परिवार की जिम्मेदारी अपने कंधों पर लेने का फैसला कर लिया।

'रामानुजन स्कूल ऑफ मैथमेटिक्स' अस्थायी रूप से बंद कर दिया गया; क्योंकि वह दोनों भाइयों का काफी समय ले लेता था और उससे कोई विशेष आय भी नहीं होती थी। तात्कालिक प्राथमिकता थी पैसे कमाना, वरना उन्हें दो समय के भोजन का भी अभाव हो जाता। जयंती देवी ने एक योजना पर काररवाई करने का फैसला कर लिया। उन्होंने कभी घर से बाहर जाकर काम नहीं किया था और पति की मृत्यु होने तक उनकी दुनिया एक आदर्श गृहिणी बने रहने तक ही सीमित रहती थी। वे यत्नपूर्वक अपने परिवार की जरूरतें पूरी करतीं; नियम से पड़ोसियों, संबंधियों और मित्रों के घर जातीं और खाली समय में पूजा-पाठ करतीं। उनमें कोई और व्यवसाय करने की दक्षता नहीं थी; लेकिन वे रसोई बनाने में माहिर थीं और उनके बनाए पापड़ बहुत मशहूर थे। उन्होंने प्रस्ताव रखा कि वे पापड़ बना सकती थीं और वे उसे मामूली लाभ के साथ बेच सकते थे। आनंद तैयार हो गए।

पापड़ आमतौर पर चावल या दालों से बनता है। जयंती देवी सूखी काली दाल को पीसकर पाउडर बनातीं और फिर उसमें पानी, नमक व मसाले डालकर आटा तैयार कर लेतीं। तैयार आटे को बेलन से बहुत पतला-पतला बेलकर धूप में सुखाया जाता। यह कमर तोड़ देनेवाला काम था, क्योंकि वह इतना सारा आटा हाथ से गूँधते थे और फिर उन्हें बहुत सतर्क रहना पड़ता था, क्योंकि हवा का एक झोंका भी छत पर सूख रहे सारे-के-सारे पापड़ों को उड़ाकर नीचे गिरा सकता था। वे बहुत नाजुक भी होते थे और उन्हें बहुत ध्यान से रखना पड़ता था, क्योंकि दुकानदार टूटे पापड़ लेने से मना कर देता था। कुछ ही दिनों में थोड़ी-बहुत मदद के साथ, जयंती एक दिन में सैकड़ों पापड़ बनाने लगीं।

आनंद अपने परिवार के श्रम को दुकानदारों को बेचने के लिए सड़कों और गलियों में घूमा करते थे। दिन में वे पापड़ बेचते थे और रात को पढ़ाई करते थे। उनकी माँ उन्हें किताबें बंद करके कुछ देर सो लेने को कहती थीं। इस प्रकार का काम करना आनंद के लिए आसान नहीं था। सामाजिक संकोच और एक प्रारंभिक चुप्पी पापड़ के व्यवसाय को इस युवा विद्वान् के लिए असहज बना देते थे; लेकिन जरूरत ने इस काम की बाध्यता साबित कर दी थी और समय के साथ उसे यह व्यवसाय पसंद आने लगा। आनंद जब भी कभी उदास होते तो सोचा करते थे कि पिताजी ने ही तो कहा है कि कोई काम छोटा नहीं होता है। बस जरूरत तो इस बातकी है कि बेटे तुम ईमानदार बने रहो। और यही बातें आनंद कुमार को ताकत दिया करती थीं।

आनंद सुबह-सुबह अपनी साइकिल की पिछली सीट पर सुरक्षित रूप से पापड़ बाँधकर तैयार हो जाते, फिर वे मोहल्ले के चक्कर लगाने शुरू करते। कई दुकानदार इस मनोहर युवा से आसानी से पापड़ ले लेते, खासतौर से उनके परिवार की त्रासदी के बारे में पता चलने के बाद। लेकिन अन्य दुकानदार उतने दयालु नहीं थे और उसके साथ बहुत बुरा व्यवहार करते थे। दुकानदार उसे 'पापड़वाला लड़का' कहकर बुलाने लगे। चूँकि वितरण और मानव शक्ति उनकी सबसे बड़ी कमजोरियाँ थीं, आनंद ने महसूस किया कि जीविका कमाने के लिए उसे निजी संसाधनों पर निर्भर होना पड़ेगा और दुकानदारों के साथ संबंधों का लाभ उठाना पड़ेगा। ऐसा करना आसान नहीं था; लेकिन वे कड़वे शब्दों या चुभती हुए तानों से विचलित नहीं होता था। उसने जल्दी ही उन बड़ी चुनौतियों को जान लिया, जिनका सामना हर व्यापारी करता है और उस मोटी चमड़ी को विकसित करना शुरू कर दिया, जो आज तक उनकी मदद करती है।

पापड़ व्यवसाय से होनेवाली आय बहुत शानदार तो नहीं थी, लेकिन धीरे-धीरे उसने उस आय का स्थान ले लिया, जो राजेंद्र प्रसाद अपने परिवार को प्रदान करते थे। साल-दो साल में वे 18,000 रुपए का ऋण चुकाने में सक्षम हो गए थे। फिर भी, काम मुश्किल था खासतौर से जयंती के लिए और उसका असर सबके ऊपर होता था।

मीना प्रसाद, जिन्हें आनंद, प्रणव और ओम सब ‘गुरुजी’ कहकर बुलाते थे, राजेंद्र प्रसाद के निधन के दो वर्ष पहले शांति कुटीर से चले गए थे। उन्होंने वहाँ से कुछ दूर एक अपेक्षाकृत सूखे इलाके में रहने का निर्णय लिया था। अब चीजें बदल गई हैं, लेकिन उन दिनों मानसून के दौरान चाँदपुर बेला में काफी जल जमाव हो जाता था और सड़कों पर कई हफ्ते घुटनों तक पानी भरा रहता था। एक अपाहिज व्यक्ति के लिए, जिसे चलने में परेशानी होती थी, ऐसी स्थिति में रहना बहुत मुश्किल था। लड़कों में से कोई गुरुजी को कंधे पर बैठाकर सड़क पार करा देता था, लेकिन यह साफ था कि उन्हें ऐसे स्थान की आवश्यकता थी, जो सूखा और सुरक्षित हो। इसलिए गुरुजी चाचीजी (उनकी पत्नी) के साथ वहाँ से कुछ ऊँचाई पर एक मामूली से घर में रहने चले गए और आनंद, प्रणव तथा ओम दोनों घरों के बीच आते-जाते रहते थे। चाचीजी, जैसा कि आनंद और प्रणव उन्हें पुकारते थे, कभी-कभी कुछ पैसों की व्यवस्था कर देतीं और कभी-कभी जब लड़के दाल-भात खाकर परेशान हो जाते तो उनके लिए कोई सब्जी बना देतीं।

परिवार में हुए हादसे के बाद ओम कुमार भी पैसे कमाने के संघर्ष का हिस्सा बन गया था। बच्चों के बड़े होने के दौरान कोई नहीं बता पाता था कि कौन किसका बेटा है। तीनों के बीच कोई फर्क नहीं समझा जाता था। आनंद और प्रणव अपने चाचा मीना प्रसाद को ‘गुरुजी’ कहते थे और ओम भी उन्हें उसी नाम से पुकारता था। प्रणव और ओम स्कूल में एक ही कक्षा में थे, क्योंकि ओम प्रणव से सिर्फ 4 महीने छोटा था। तीनों भाइयों में हमेशा से बहुत प्रेम था। ओम और प्रणव की जोड़ी तो अविभाज्य थी, लेकिन जहाँ आनंद अध्ययनशील था और प्रणव का संगीत की ओर झुकाव था, ओम बड़ा होने के साथ कुछ गलत संगत में पड़ गया। उसने पढ़ाई में ध्यान देना कम कर दिया और उसका समय गली-मोहल्ले के दोस्तों के साथ घूमने में बरबाद होने लगा। एक दिन उसकी दसवीं की परीक्षा के कुछ दिनों पहले राजेंद्र प्रसाद ने उसे बुलाया, “तुम मेरे लिए बेटे जैसे हो। तुम अपना जीवन क्यों बरबाद कर रहे हो? मैंने तुम्हें कभी आनंद या प्रणव से अलग नहीं समझा। मुझसे कहाँ गलती हो गई?” यह कहकर वे रोने लगे। राजेंद्र प्रसाद की आँखों में आँसू देखकर ओम अपराध भाव से भर गया। उसने उनका दिल कभी नहीं दुखाना चाहा था। वास्तव में ओम ने हमेशा उन्हें ‘पिताजी’ ही कहा था, जैसा कि प्रणव और आनंद कहते थे। ओम को एहसास हो गया कि उसकी वजह से परिवार को कितना कष्ट हो रहा है। उसने राजेंद्र प्रसाद से वादा किया, “आज के बाद मैं आपको शिकायत का मौका नहीं दूँगा, पिताजी। मैं सब गलत काम छोड़ दूँगा और अपनी पूरी ताकत पढ़ाई में लगाऊँगा।” उसने एक नई शुरुआत की, बहुत मेहनत से पढ़ाई की। लेकिन मन लगाकर पढ़ाई करने के बावजूद वह दसवीं में अच्छे अंक नहीं ला पाया।

लेकिन सबने देखा था कि उसने ईमानदारी से कोशिश की थी।

राजेंद्र प्रसाद ने उसे टाइपिंग सीखने के लिए कहा। उन दिनों टाइप करना सीख लेना रोजगार कौशल को बढ़ाने का अच्छा तरीका था। राजेंद्र प्रसाद की मृत्यु के बाद ओम ने चुपचाप उनका शोक मनाया। जिस व्यक्ति ने उसे प्रेरित किया था, वह अब दुनिया में नहीं था। उसने मन लगाकर टाइपिंग सीखना शुरू कर दिया, लेकिन अपने दोनों भाइयों की तरह उसे भी पापड़ व्यवसाय में शामिल होना पड़ा। आनंद देख रहा था कि किस तरह ओम सुबह कॉलेज जाता, फिर 4-5 घंटे टाइपिंग का अभ्यास करता और फिर पापड़ वितरण के अपने रास्ते पर, जो आनंद से अलग था, निकल जाता था।

वर्ष 1997-98 में आखिरकार ओम की कड़ी मेहनत रंग लाई। जैसी कि पिताजी ने भविष्यवाणी की थी, उसने पहले ही प्रयास में कर्मचारी चयन आयोग (स्टाफ सिलेक्शन कमीशन—एस.एस.सी.) की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली और उसे इलाहाबाद में एक स्टेनो टाइपिस्ट की नौकरी मिल गई। उसने वहाँ अपना प्रशिक्षण जारी रखा और आज वह पटना में भारत सरकार का लेखा अधिकारी है।

महीने बीतते गए और पापड़ बिलों का भुगतान करने में मदद करते रहे। हालाँकि इतना नहीं कि उनके दरवाजे से भूख पूरी तरह मिटा सके। ऐसी रातें भी होती थीं, जब आनंद और उसके भाई को बहुत थोड़ा खाकर सोना पड़ता था। जब भोजन होता था तो वे अपनी माँ के साथ जमीन पर पालथी मारकर बैठ जाते और साधारण रोटी-सब्जी को उत्साह से खाते। उन दिनों जब कभी उसकी माँ उसकी पसंदीदा पनीर की सब्जी और रोटी बनाती तो आनंद को जैसे स्वर्ग मिल जाता, हालाँकि जिस दिन कुछ कम खाने को होता, आनंद एक गिलास ठंडा पानी पीकर अपनी भूख की उपेक्षा करने की कोशिश करता। जो कि बिहार में कई लोगों के लिए जीवन जीने का तरीका था।

जीवन में पहली बार आनंद को वास्तव में भूख के विनाशकारी मनोवैज्ञानिक प्रभाव का एहसास हुआ, जो शारीरिक प्रभावों से अधिक शक्तिशाली था। उसे एहसास हुआ कि उसका परिवार कितना भाग्यशाली था कि उन्हें वह मामूली सा मासिक वेतन मिलता था, जो उसके पिताजी डाक विभाग की नौकरी से अर्जित करते थे। उसे यह भी समझ में आने लगा कि कुछ लोग भूख के शिकंजे से बचने के लिए वह सब क्यों करते थे, जो वे करते थे।

अपने कमजोर पलों में आनंद के मन में बेहतर कमाई करने के लिए मुंबई या कोलकाता जाने का विचार आता; लेकिन जब भी वह अपनी माँ को और घर को छोड़ने की कल्पना करता, वह खुद को खोखला महसूस करता। मैं ऐसा नहीं कर सकता। यह तो अपने हाथ काटकर जीवन में आगे बढ़ने जैसा होगा। आनंद सोचने लगता।

आनंद को लगने लगा कि उनकी शैक्षणिक आकांक्षाएँ एक धीमी मौत मर चुकी थीं। 'मैं एक शिक्षित व्यक्ति हूँ। यदि हम कमर-तोड़ मेहनत करके गुजारा चलाने की कोशिश करते रहेंगे तो जीवन में क्या हासिल कर पाएँगे? शिक्षा का क्या लाभ है, अगर आप कुछ बेहतर नहीं कर सकते?'

पापड़ व्यवसाय से लाभ कम होता था, लेकिन वह एक स्थिर आय का जरिया था। आनंद ने खुद से तर्क किया और उन्हें लगा कि उन्हें उस व्यवसाय को जारी रखने की जरूरत थी, लेकिन 'रामानुजन स्कूल ऑफ मैथमेटिक्स' बंद करने के लगभग एक वर्ष बाद वह उसे दोबारा खोलने के बारे में भी विचार करने लगे। प्रणव ने भी उन्हें प्रोत्साहित किया और उसकी माँ ने कहा कि यदि उसके पिता जीवित होते तो वे भी यही चाहते। आनंद भी यह बात जानते थे। राजेंद्र प्रसाद कभी स्कूल को बंद करने के पक्ष में नहीं होते।

आनंद ने बैल को सींग से पकड़ने का निर्णय लिया और शिक्षण का एक और प्रयास करने का फैसला कर लिया। उन्होंने सन् 1995 में 'रामानुजन स्कूल ऑफ मैथमेटिक्स' दोबारा खोल लिया। आनंद ने पापड़ बेचकर कमाए पैसों का कुछ अंश किराया देने में इस्तेमाल किया। आरंभिक प्रतिक्रिया बहुत उत्साहजनक नहीं थी, जहाँ सिर्फ छह छात्रों ने कार्यक्रम में दाखिला लिया; लेकिन इस बात ने आनंद को हतोत्साहित नहीं किया, बल्कि उन्हें लगने लगा कि उन्हें सतानेवाले सभी विचार किनारे हो गए थे। कक्षा में, सब छात्रों के सामने, वे बिल्कुल निडर महसूस करते थे। सारी चिंताएँ उनके मन के पीछे चली गईं और वे अपनी पूरी लगन व दृढ संकल्प के साथ अपने छह छात्रों को पढ़ाने में जुट गए। कक्षा में आनंद बिल्कुल बदल जाते थे।

आनंद के छात्रों को दोनों ही बातें पसंद आती थीं—जो आनंद पढ़ाते थे, वो भी और जिस तरह वे पढ़ाते थे, वो भी। उनका पढ़ाने का तरीका स्पष्ट और व्यावहारिक था और छात्रों को लगने लगा था कि उन्हें दिया गया कार्य उन्हें बिना अधिक कठिनाई के गणित की समस्याओं को अपने आप सुलझाने में सक्षम बना रहा है। यह बात फैलने में अधिक समय नहीं लगी कि यह युवा शिक्षक एक बार फिर अपना जादू चलाने लगा है।

रामानुजन के कुछ छात्र आई.टी. जे.ई.ई. और अन्य प्रतियोगी परीक्षाएँ देने के बारे में गंभीर थे। हालाँकि, अन्य कोचिंग संस्थानों द्वारा माँगी जानेवाली फीस हद से ज्यादा थी और ये छात्र किसी भी तरह उतनी फीस नहीं दे सकते थे। आनंद ने इन छात्रों को उस फीस का दसवाँ हिस्सा लेकर कोच करने का फैसला किया। आनंद की ट्यूशन प्रणाली अविश्वसनीय रूप से सरल थी—आप अपनी सुविधानुसार किसी भी रूप में भुगतान कर सकते थे। आपके पास जब भी पैसे हों, आप भुगतान कर सकते थे, न कोई अग्रिम भुगतान, न कोई छुपा हुआ भुगतान, जो इन साधारण परिवार के बच्चों के लिए देना मुश्किल होता।

आनंद सुबह के समय पापड़ का वितरण करने निकलते और साइकिल चलाने के समय का उपयोग अपनी शाम की कक्षाओं की तैयारी के लिए करते। यह निश्चित रूप से अपरंपरागत था; लेकिन वे वास्तविकता में निहित उपाख्यानों और उदाहरणों को उठाने में सक्षम थे और उनकी मदद से छात्रों के साथ अच्छा सामंजस्य बैठा लेते थे। इसी समय के आसपास आनंद ने नियमित रूप से 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के लिए युवा पाठकों को लक्ष्य

करके गणितीय पहेलियाँ बनानी शुरू कीं। एक ऐसा काम, जो उत्तम सेनगुप्ता के साथ उनके बढ़ते अपनेपन के कारण संभव हुआ। उत्तम की आनंद की संपूर्ण कृतियों में आस्था निरंतर बनी रही और उनके पास आनंद को देने के लिए और कुछ नहीं तो नैतिक समर्थन हमेशा रहता था। उस समय दैनिक समाचार-पत्र में आनंद का कॉलम बहुत लोकप्रिय हो गया था और वह 'कैरियर एंड कंपिटीशंस' नाम के एक सप्ताहांत पुल-आउट में भी छपने लगा, जो विशेष रूप से छात्रों को लक्ष्य करके निकाला जाता था। इस कॉलम ने और रामानुजन स्कूल के छात्रों के मुँह से हो रहे प्रचार ने आनंद की लोकप्रियता बढ़ा दी और स्कूल में दाखिले की दर बढ़ने लगी। वर्ष 1996 तक स्कूल में छात्रों की संख्या 36 हो गई थी।

स्कूल के बढ़ने के साथ आनंद के परिवार की वित्तीय समस्याएँ धीरे-धीरे कम होने लगीं। प्रत्येक सफल छात्र की कहानी पढ़ने के बाद इच्छुक नए छात्रों को स्कूल लेकर आती और पापड़ व्यवसाय और ट्यूशन फीस के बीच अब जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कुछ पैसे बच जाते थे।

छात्रों की संख्या बढ़ने के साथ आनंद को एहसास हुआ कि उन्हें और अधिक स्थान की आवश्यकता थी, इसलिए उन्होंने स्कूल को मध्य पटना के राजेंद्र नगर में एक बड़े परिसर में स्थानांतरित कर दिया।

व्यवसाय के परिप्रेक्ष्य से ये एक बहुत समझदारी भरा कदम था, क्योंकि अब स्कूल एक ऐसे इलाके में आ गया था, जहाँ पहुँचना आसान था और इसलिए इसके और अधिक छात्रों को आकर्षित करने की संभावना थी। यह एक नई शुरुआत थी, क्योंकि उन दिनों मध्य पटना कोचिंग संस्थानों का गढ़ था और नई जगह, असाधारण शिक्षण और बहुत कम फीस के कारण गरीब समुदायों के छात्र रामानुजन स्कूल ऑफ मैथमेटिक्स में आने लगे। इस बीच प्रणव, जो मुंबई में वायलिन वादक के रूप में अपने कैरियर को आगे बढ़ा रहा था, स्कूल के प्रशासनिक पक्ष की देखभाल करने पटना आता रहता था। उन्होंने छात्रों को फिजिक्स और केमिस्ट्री पढ़ाने के लिए भी कुछ शिक्षक नियुक्त कर लिये थे, जिससे स्वाभाविक रूप से ऊपरी खर्च बढ़ गए थे और प्रणव की जिम्मेदारियाँ और महत्त्वपूर्ण हो गई थीं; क्योंकि यदि स्कूल को लंबी अवधि के लिए सफल बनाए रखना था और हर चीज और हर व्यक्ति को सँभालना था तो स्कूल के वित्तीय संसाधनों का सावधानी से लेखांकन करते रहना आवश्यक था।

वर्ष 1997 तक रामानुजन स्कूल में छात्रों की संख्या 300 से अधिक हो गई थी। क्लासरूम तंग थे, लेकिन उससे छात्रों के बीच सौहार्द और जुड़ाव की भावना बढ़ती थी, जिसका छात्र मजा भी लेते थे। अन्य कोचिंग संस्थान यह देखकर दंग थे कि कैसे आई.आई.टी. जे.ई.ई. का हर आकांक्षी रामानुजन के दरवाजे पर दस्तक दे रहा था। इसका एक कारण यह भी था कि आनंद छात्रों के अध्ययन पाठों में व्यक्तिगत रूप से शामिल होते

थे। स्कूल में इतने सारे छात्र होने के बावजूद आनंद प्रत्येक छात्र को उसके पहले नाम से जानते थे और प्रत्येक छात्र की सीखने की क्षमता और उसके अंतिम लक्ष्य के बारे में भी जानते थे। प्रत्येक छात्र को उनका व्यक्तिगत ध्यान प्राप्त होता था और हर छात्र जानता था कि वह उनसे किसी भी विषय पर बात कर सकता है। छात्र वहाँ सिर्फ गणित नहीं सीख रहे थे, बल्कि जीवन के सबक, उसकी चुनौतियों और उनके संभव समाधानों के बारे में भी सीख रहे थे—यह वे पाठ नहीं थे, जो मोटी फीस देकर खरीदे जा सकते थे।

आनंद साल-दर-साल स्कूल में सुविधाएँ बढ़ाते रहे और वहाँ दी जानेवाली शिक्षा की गुणवत्ता में निरंतर सुधार लाने का प्रयास करते रहे। उन्होंने एक पब्लिक एड्रेस सिस्टम (जन संबोधन प्रणाली) खरीदा, जिसमें कई स्पीकर थे और उन्हें स्कूल के प्रत्येक कोने में स्थापित करवा दिया, ताकि हर रोज एकत्र होनेवाले छात्रों के विशाल समूहों को संबोधित किया जा सके, जो कई मौकों पर 300 के लगभग भी हो जाते थे। वे खुद एक ऊँचे मंच पर खड़े हो जाते थे, ताकि छात्र उन्हें साफ-साफ देख सकें। जिस ब्लैकबोर्ड का वे समीकरण और आरेख बनाने के लिए प्रयोग करते थे, वह हमेशा उनके पीछे रखा रहता था, जिसके साथ ढेर सारी चॉक रहती थी। छात्र चौकस रहते थे। वे खुद उत्साहित रहते थे और परिणाम बहुत कुछ कह जाते थे।

सन् 1998 तक आनंद के पास काम की अधिकता हो गई। छात्रों की संख्या एक-तिहाई और बढ़ गई थी और 400 छात्रों को पढ़ाने की जिम्मेदारी के अपने लाभ भी थे और चुनौतियाँ भी थीं।

उसी वर्ष आनंद को आई.आई.टी. कानपुर की यात्रा करनी थी। दिल्ली से उन्होंने उत्तम सेनगुप्ता को फोन किया, जो उस समय लखनऊ में 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के संपादक थे। वे लखनऊ रुककर अपने इस दोस्त से मिलने के लिए बहुत उत्सुक थे, जिसने उनके संघर्ष के दिनों में उनका दृढता से साथ दिया था। वे देर शाम सेनगुप्ता के घर पहुँचे और ट्रेन की यात्रा से थके होने के कारण सबसे पहले उन्हें स्नान करके तरोताजा होने की जरूरत महसूस हुई। जब उनके अतिथि स्नान कर रहे थे, तब सेनगुप्ता की नजर पुस्तकों से भरे उन दो बैगों पर पड़ी, जो आनंद अपने साथ लाए थे। जिज्ञासावश वे पुस्तकें देखने लगे और उन्हें यह देखकर सुखद आश्चर्य हुआ कि प्रत्येक पुस्तक विदेश में प्रकाशित गणितीय ग्रंथ थी, जो गौड़ीय मठ की झुग्गी-बस्ती से आए एक साधारण पापड़ बेचनेवाले के लिए काफी महँगी विलासिता की श्रेणी में आती थी। जब आनंद बाहर आए तो सेनगुप्ता ने उन बैगों की ओर इशारा करके पूछा कि उनके लिए इन पुस्तकों को खरीदना कैसे संभव हो पाया। आनंद ने सरलता से जवाब दिया, "स्कूल से कमाए पैसों से।" रामानुजन में उस समय 400 छात्र पढ़ रहे थे और प्रत्येक छात्र फीस के रूप में प्रतिवर्ष 500 रुपए देता था। कुल मिलाकर यह राशि दो लाख रुपए प्रतिवर्ष हो जाती थी। स्टाफ का वेतन, स्कूल का किराया और अन्य ऊपरी खर्च निकालने के बाद भी पर्याप्त राशि बच जाती थी।

अब परिवार की आय स्थिर हो गई थी और भुखमरी उनके दरवाजे पर दस्तक नहीं देती थी; लेकिन इस सुरक्षा की उन्हें कीमत चुकानी पड़ती थी। दिन खत्म होने तक सब लोग, विशेष रूप से आनंद, बुरी तरह थक जाते थे। वे अभी भी सुबह पापड़ वितरित करने जाते थे और दोपहर व शाम को कई घंटे अपना अध्यापन कार्य करते थे। बचे हुए अति सीमित समय में वे अभी भी गणित पढ़ते थे। एक शाम जयंती देवी उन्हें वितरण के लिए पापड़ पैक करने में मदद कर रही थीं। आनंद के लिए आँखें खुली रख पाना मुश्किल हो रहा था और उनका चेहरा स्याह हो गया था। जयंती देवी ने उनका माथा छुआ तो वह तप रहा था। ''तुम इस तरह काम नहीं करते रह सकते!'' उन्होंने आनंद से कहा, ''मैं ठीक हूँ।'' माँ, आनंद ने बात टाल दी।

''तुम पच्चीस साल के हो और तुम्हारी यह हालत हो गई है। मैं यह नहीं देख सकती। क्या फायदा इस पैसे का, अगर तुम्हें कुछ हो जाता है तो?'' पसीने से चमकते चेहरे के साथ उन्होंने कहा।

परिवार के बाकी सदस्यों के साथ लंबी व मुश्किल चर्चाओं के बाद यह निर्णय लिया गया कि वह पापड़ का व्यवसाय बंद करके स्कूल पर ध्यान केंद्रित करेंगे।

वर्ष 2000 तक स्कूल के रजिस्टर में लगभग 500 छात्रों के नाम अंकित हो चुके थे। उपलब्धि दरों के आधार पर यह पटना में अब तक का सबसे सफल संस्थान था। वह छात्र, जो रामानुजन स्कूल से उत्कृष्ट कोचिंग और आत्मविश्वास प्राप्त कर रहे थे, अन्य संस्थानों के छात्रों की तुलना में आई.आई.टी. जे.ई.ई. और अन्य प्रतियोगी परीक्षाओं में कहीं अधिक सफलता पा रहे थे।

यह भी एक खुला रहस्य था कि इनमें से कुछ संस्थानों ने साथ मिलकर एक कोचिंग माफिया का रूप ले लिया था और वह अपना मनचाहा करवाने के लिए हिंसा और धमकियों का उपयोग करने से भी पीछे नहीं हटते थे। यह आनंद का दुर्भाग्य था कि इस कोचिंग माफिया के सदस्यों के स्वामित्ववाले स्कूल भी उनमें शामिल थे, जिनका इस नवागंतुक की सफलता से सबसे नुकसान हुआ था। कुछ संस्थानों के दिमाग में तो यह बात बैठ गई कि यदि उनके स्कूलों को बने रहना है तो इस समस्या का कोई हल निकालना होगा।

वर्ष 2000 में आनंद, उनके स्कूल और मकान मालकिन—एक बंगाली महिला, जिसने रामानुजन स्कूल को अपना परिसर किराए पर दिया था—के खिलाफ धमकियों का एक सिलसिला शुरू हो गया। जिस भूमि पर स्कूल स्थित था, उसके स्वामित्व को हड़पने का प्रयास किया गया—और आगे जाकर मकान मालकिन व स्कूल के खिलाफ एक सिविल केस भी दायर किया गया, जिसका विवरण संदिग्ध था। स्थानीय पुलिस ने अपराधियों से हाथ मिला लिया था। एक बार तो पुलिस आनंद को खींचकर सड़क पर भी ले आई और

उन्हें तत्काल स्कूल परिसर खाली करने का आदेश दे दिया। जब युवा शिक्षक ने ऐसा करने से इनकार कर दिया तो उन्हें गिरफ्तार करके स्थानीय पुलिस स्टेशन ले जाया गया।

जब आनंद के छात्रों को स्थिति की भनक लगी तो वे बड़ी संख्या में पुलिस स्टेशन पहुँचे और जबरदस्ती अंदर घुसकर अपने प्रिय शिक्षक को रिहा करने की माँग करने लगे। साथ ही वे यह भी जानने की माँग कर रहे थे कि उन्हें क्यों गिरफ्तार किया गया था। अंत में आनंद को बिना कोई आरोप लगाए पुलिस की हिरासत से रिहा कर दिया गया; लेकिन ये उनकी मुसीबतों का अंत नहीं था।

कोचिंग माफिया चुपचाप बैठे रहनेवालों में से नहीं था और जुलाई 2000 में उसने बात बढ़ाने का निश्चय कर लिया। तीन सशस्त्र गुंडों ने आकर स्कूल पर गोलीबारी शुरू कर दी और आतंक फैलाने के लिए देसी बम फेंकने लगे। एक बार फिर आनंद के छात्र बचाव के लिए आगे आए। उन्होंने स्कूल से बाहर निकलकर गुंडों को चौंका दिया। उन लोगों के खिलाफ मन में दबा रोष, जो उनके जन्म के समय से उन्हें कुचल रहे थे, बाहर निकल आया और कुछ ही देर में छात्र तीन में से दो गुंडों को शारीरिक रूप से काबू करने में सफल हो गए। आनंद ने पुलिस को बुलाया और हमलावर उसे सौंप दिए गए।

शांति की एक झलक लौट आई; लेकिन कोचिंग माफिया की ओर से दुश्मनी अभी भी साफ नजर आ रही थी। भूमि का मुद्दा एक बड़ी समस्या बनता जा रहा था, क्योंकि बंगाली मकान मालकिन दबाव महसूस करने लगी थी और अब वह अपने परिसर में आनंद का स्कूल जारी रखने के लिए बहुत उत्सुक नहीं लग रही थी। 500 छात्रों के साथ यह इमारत भी छोटी साबित हो रही थी और आसपास ऐसा कुछ नहीं था, जो उनके उद्देश्य की पर्याप्त रूप से पूर्ति कर पाता। आनंद के लिए उनके छात्रों की सुरक्षा भी बहुत महत्त्व रखती थी, विशेष रूप से बम विस्फोट के प्रयास के बाद।

काफी तलाश करने के बाद आनंद को पटना के बाहरी क्षेत्र में कुम्हरार के निकट शहर के एक सुनसान हिस्से में एक बड़ा सा इलाका मिला, जहाँ अकसर जल-जमाव होता रहता था। उन लोगों ने जल जमाववाले हिस्से को बालू और पत्थरों से भर दिया और कुछ ही दिनों में उसे रहने योग्य बना दिया। यह नया स्थान एक जोखिम था, क्योंकि वे कोचिंग जिले के केंद्र में स्थित एक प्रमुख स्थान से दूर आ रहे थे और कुछ लोगों को लग रहा था कि छात्र इतनी दूर पढ़ने के लिए नहीं आएँगे।

अपनी ओर से आनंद को तमाम बाधाओं के बावजूद विश्वास था कि उनकी शिक्षण क्षमताएँ छात्रों को उनके पास लाती रहेंगी—और अंत में वे सही साबित हुए। छात्र बारिश में घुटनों तक पानी में चलकर भी उनकी कक्षाओं में आते थे। आनंद के मन में, और शायद छात्रों के भी, उनका क्लासरूम उनके गरीब छात्रों के लिए सचमुच में एक शिक्षा का नखलिस्तान बन गया था। नए स्थान ने रामानुजन स्कूल की गति को बिल्कुल भी कम नहीं किया और नए छात्रों की भीड़ ने इस बात को साबित कर दिया।

समय बीतने के साथ माँग उच्च बनी रही; लेकिन आनंद को लगता था कि 500 से अधिक छात्रों को दाखिला देना स्कूल के सीमित स्थान और संसाधनों को देखते हुए अव्यावहारिक होगा। अब समय था नामांकन को सीमित करने का उपाय खोजने का, और अन्य शिक्षकों के साथ चर्चा के बाद यह निर्णय लिया गया कि प्रवेश परीक्षा ही वांछित लक्ष्य को प्राप्त करने का एकमात्र तरीका था। पहली ही परीक्षा में 7,500 छात्रों की अभूतपूर्व संख्या टेस्ट के लिए बैठी।

कुछ ऐसे लोग भी थे, जिन्होंने रिश्वत के माध्यम से परिणामों को प्रभावित करने की कोशिश की; लेकिन आनंद और प्रणव यह सुनिश्चित करने के अपने दृढ संकल्प के प्रति कठोर थे कि रामानुजन स्कूल में दाखिले के लिए योग्यता ही निर्णायक कारक होगी। रिश्वत को साफ इनकार कर दिया गया, यह जानते हुए कि उससे उनके परिवार की आर्थिक स्थिति में कितना फर्क आ सकता था और ट्यूशन फीस जान-बूझकर कम रखी गई, ताकि गरीब छात्र भी स्कूल में दाखिला ले सकें। घोर गरीबी का सामना कर रहे छात्रों की फीस पूरी तरह माफ कर दी गई।

वर्ष 2000 के अंत तक रामानुजन स्कूल अपने नए स्थान में मजबूती से स्थापित हो गया। स्थान पूर्णता से बहुत दूर था। हर जगह पानी था। सिर्फ छत और दीवारें और शिक्षण के लिए उपकरण भी सीमित थे। लेकिन स्कूल के 500 छात्र वहाँ सौंदर्यशास्त्र के लिए नहीं आते थे। वे वहाँ आते थे सीखने के लिए, उच्च अंक प्राप्त करने के लिए, माध्यमिक शिक्षा के बाद होनेवाली संस्थानों की प्रवेश परीक्षाओं के लिए कोचिंग प्राप्त करने और उन परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने के लिए। वे उस असाधारण गणितज्ञ से पढ़ने के लिए सबकुछ सहने के लिए तैयार थे, जिसके पढ़ाने का तरीका कुछ अलग हटकर था, जो अपने छात्रों की परवाह करता था और उन्हें उनके सपने पूरे करते हुए देखने के लिए जो भी आवश्यक होता था, करता था।

आनंद का जीवन पटरी पर चलता प्रतीत हो रहा था। बिहार का एक गरीब परिवार और क्या चाह सकता है! उनके पास पर्याप्त पैसे थे और हालात बेहतर होते दिखाई दे रहे थे। उन्हें क्या पता था कि आनंद की अंतरात्मा बेचैन थी और कुछ ही समय में घटनाओं की एक शृंखला पलड़े को दूसरी ओर झुकाकर यह दिखा देने वाली थी कि यह सरल, निरहंकारी व्यक्ति क्या कुछ करने में सक्षम था।

छात्र के मुख से

नाम : मोहम्मद अकीबुर रहमान
सुपर 30 बैच : 2008
इंस्टीट्यूट और स्ट्रीम : मीनिंग मशीनरी इंजीनियरिंग, आई.एस.एम. धनबाद; आई.आई.एम. अहमदाबाद
वर्तमान जॉब : मार्केटिंग मैनेजर, कारदेखो.कॉम

ब्रैड हेनरी ने कहा था—एक अच्छा शिक्षक उम्मीद जगा सकता है, कल्पना को प्रज्वलित कर सकता है और सीखने के प्रति प्रेम उत्पन्न कर सकता है। यह वर्णन आनंद सर पर बिल्कुल सटीक बैठता है, जिन्होंने न सिर्फ मुझसे गणितीय अवधारणाओं की कल्पना करवाई, बल्कि बड़े सपने देखने में मेरी मदद की और उन्हें पूरा करने के लिए मुझे प्रेरित किया। उच्च निरक्षरता दरवाले क्षेत्र और समुदाय से आया होने के कारण मेरे परिवार ने और मैंने कभी नहीं सोचा था कि मैं वहाँ तक पहुँच पाऊँगा, जहाँ मैं आज हूँ। जिस प्रकार आनंद सर हमेशा मूल बातों पर ध्यान केंद्रित करते हैं और जिस प्रकार वे क्लासरूम में हास्य और अंत:क्रियाशीलता का प्रयोग करते हैं, कि मेरे लिए आज भी उनकी सिखाई किसी गणितीय अवधारणा को याद करना बहुत आसान है। आनंद सर खूबसूरत तरीके से गणित सिखाने के अलावा अपने क्लासरूम में जीवन भर के लिए सीख प्रदान करते हैं, जो उनके छात्रों को अपना लक्ष्य प्राप्त करने के लिए लड़ने और संघर्ष करने के लिए प्रेरित करती है— समय और परिस्थिति द्वारा उत्पन्न किसी भी कठिनाई से विचलित हुए बिना। वे खुद भी वंचितों और दलितों के लिए एक आदर्श हैं। वे ही हैं, जो हम छात्रों में यह आत्मविश्वास पैदा करते हैं कि हम चाहें तो कुछ भी हासिल कर सकते हैं, चाहे परिस्थितियाँ कैसी भी हों।

5

सुपर 30 की ताकत

वर्ष 2002 के आरंभ में अभिषेक राज नाम का एक लड़का रामानुजन स्कूल ऑफ मैथेमेटिक्स में आया। अपनी माँ के साथ आए अभिषेक ने आनंद से कहा कि वह आई.आई.टी. प्रवेश परीक्षा के लिए इस स्कूल में दाखिला लेना चाहता है, लेकिन अभी उसके पास देने को फीस नहीं है। उसने कहा कि जब उसके पिता के पास आलू की खेती से कुछ पैसा आ जाएगा, तब वह किस्तों में फीस चुका पाएगा।

उसकी माँ ने भी कहा कि अभिषेक पढ़ाई में बहुत होशियार है और अपने गाँव के स्कूल में हमेशा प्रथम आता रहा है।

उन दिनों फीस मात्र 1,000 रुपए सालाना होती थी। आनंद ने उस बच्चे और उसकी माँ को बैठाया और उनसे उनके बारे में और विस्तार से बताने को कहा।

अभिषेक बिहार के एक छोटे से गाँव रसालपुर का रहनेवाला था। उसके पिता एक गरीब किसान थे और अनियमित मानसून के बीच कभी-कभार बच जानेवाली आलू की फसल से होनेवाली थोड़ी सी आय के अलावा उनके पास आमदनी का कोई और जरिया नहीं था।

अभिषेक गाँव में ही स्कूल में जाने लगा और अच्छे नंबर लाने लगा। उसे इस बात से भी कोई फर्क नहीं पड़ता था कि स्कूल में मेज-कुरसियाँ होना तो दूर की बात, दरवाजे-खिड़कियाँ तक सलामत नहीं थे। अभिषेक के पिता के पास किताबें खरीदने या अपने बेटे को किसी अच्छे प्राइवेट स्कूल में पढ़ाने लायक पैसे नहीं होते थे। हालाँकि उसकी माँ सुधा कुमारी कुछ पढ़ी-लिखी महिला थीं। उन्होंने ट्यूशन की तलाश शुरू की, जो कि रसालपुर जैसी जगह में मिलना बहुत मुश्किल था; लेकिन किसी तरह से वह ट्यूशन के जरिए हर माह सौ रुपए तक कमाने लगीं। यह रकम बहुत कम थी, पर उनके पास इसके अलावा कोई और चारा नहीं था।

आनंद यह जानकर दंग रह गए कि सुधा कुमारी ने इतनी कड़ी मेहनत करके, इतनी कम आय होने के बावजूद अपने बेटे को पढ़ाया।

उन्होंने माँ-बेटे को बताया कि वे एक नया प्रोग्राम शुरू कर रहे हैं और उन्हें अगले सप्ताह फिर से आने को कहा। सच्चाई तो यह थी कि ऐसा दयनीय मामला आनंद के सामने कोई पहली बार नहीं आया था।

किशन कुमार नाम का एक लड़का भी आनंद के पास आया था। नंगे पैर और फटी शर्ट पहने किशन ने आनंद से कहा था कि वह इंजीनियर बनना चाहता है लेकिन उसके पास ट्यूशन फीस देने के लिए पैसे नहीं हैं।

'पटना में तुम कहाँ रहते हो?' आनंद ने उससे पूछा था।

'मैं एक धनी आदमी के मकान की देख-रेख करता हूँ और वहीं रहता हूँ। लेकिन मैं चौकीदार नहीं हूँ।' उसने हिम्मत के साथ जवाब दिया, 'मैं इंजीनियर बनने पटना आया हूँ। मैं रोज पढ़ाई करता हूँ।'

आनंद को कुछ संदेह हुआ, इसलिए उन्होंने उस धनी आदमी के मकान का पता पूछा और स्वयं वहाँ जाकर देखने का निश्चय किया। शाम को वे अपने भाई प्रणव के साथ उस मकान पर गए। वहाँ उन्होंने किशन कुमार को गेट पर बैठे किताब हाथ में लिए देखा। अँधेरा हो चुका था और वह स्ट्रीट लाइट की रोशनी में पढ़ रहा था। दोनों भाइयों का दिल भर आया।

आनंद बेचैन हो गए। *'जब मुझे कैंब्रिज जाने के लिए पैसे की जरूरत थी, तब किसी ने मेरी मदद नहीं की थी। अगर मैं ऐसे होनहार छात्रों की मदद नहीं कर सकता तो मेरे स्कूल का क्या मतलब रह जाता है? फिर, इन बच्चों की गलती तो बस, यही है न कि वे गरीब घर में पैदा हुए हैं।'* यह संवेदनशील घटना उन्हें परेशान किए रही। उन्हें महसूस हुआ कि किशन कुमार या अभिषेक राज की तरह बहुत सारे लड़के ऐसे होंगे, जो कोचिंग की सालाना हजार रुपए की फीस भी नहीं दे सकते। उनके बारे में भी क्यों न सोचा जाए!

'पिता तो मुझसे और ज्यादा अपेक्षा करते थे। भले ही मेरे छात्र अच्छा प्रदर्शन कर रहे हैं, लेकिन उन गरीब छात्रोंका क्या जिनके पास पटना में फीस देने की बात तो दूर रहने-खाने के लिए भी पैसे नहीं हैं।' उन्होंने सोचा।

'यह सही नहीं है।' उनके दिमाग में रहस्यमय तरीके से एक आवाज गूँजी, जो उनकी पिता की आवाज की तरह लग रही थी। 'तुम उनको केवल पढ़ा भर नहीं रहे हो। तुम अपना कर्तव्य भर नहीं कर रहे हो, बल्कि उससे भी आगे बढ़कर हजारों छात्रों की मदद कर रहे हो और बदले में नाममात्र की फीस ले रहे हो! मत भूलो कि तुम्हारा मकसद बहुत बड़ा है।'
आनंद के मन में राजेंद्र प्रसाद की आवाज गूँज रही थी।

'गजब। अब तो मैं खुद पागल हुआ जा रहा हूँ। मैं कितना महान् शिक्षक हूँ।' आनंद ने इन विचारों को भुलाने के लिए अपने सिर को झटका दिया। जब वे घर लौटे तो उन्होंने निश्चय किया कि वे इस उधेड़बुन से बाहर निकलेंगे और ऐसे बच्चों की सहायता और भलाई के लिए कुछ-न-कुछ जरूर करेंगे, जो पढ़ाई-लिखाई का खर्चा वहन नहीं कर पा रहे। हमेशा की तरह, जब भी कभी वे फुरसत में होते, उनके दिमाग में ये विचार बार-बार आने लगते। हालाँकि, इस बार आनंद को लगा कि उन्हें अपने इस सपने के बारे में अपने परिवार से बात करनी चाहिए और इसे मूर्त रूप देना चाहिए।

□

'हम तीस बच्चों को मुफ्त में नहीं खिला सकते! तुम हो क्या? संत-महात्मा हो क्या?' जयंती देवी बोलीं।

आनंद ने अपने दिल की बात प्रणव और जयंती देवी को बताई। अब, जबकि उनके पास कुछ पैसा आ चुका था तो वे गरीबी से लड़ने के लिए कुछ खास करना चाहते थे। जब से कैंब्रिज जाने का उनका सपना निर्दयतापूर्वक चकनाचूर हुआ था, तभी से आनंद ऐसे लाखों

अवसरों के बारे में अकसर सोचा करते थे, जिनका फायदा बच्चे केवल इसलिए नहीं ले पाते थे, क्योंकि उनके पास पैसा नहीं होता था। वे इन बच्चों के लिए कुछ करना चाहते थे, लेकिन दुर्भाग्य से अब तक उनके पास साधन नहीं थे। अब, जबकि उनके पास कुछ नियमित आय का जरिया हो गया था, इसलिए अब वे रामानुजन स्कूल का स्वरूप बदलने के बारे में सोचने लगे। उन्होंने उन बच्चों के बारे में विचार करना शुरू कर दिया, जो स्कूल की मामूली सी फीस भी नहीं दे पा रहे थे।

उन्होंने तय किया कि वे वंचित तबके के बच्चों की क्षमता परखने के लिए एक प्रवेश परीक्षा लेंगे। इस परीक्षा के जरिए वे टॉप के 30 विद्यार्थियों का चयन करेंगे और उन्हें आई.आई.टी. जे.ई.ई. की तैयारी मुफ्त में कराएँगे। इतना ही नहीं, वे उन बच्चों की रहने की व्यवस्था भी पास में ही कराएँगे, हालाँकि तब तक उन्हें यह पता नहीं था कि यह सब होगा कैसे। वे तो बस, बातचीत के जरिए अपनी माँ से अनुरोध ही कर रहे थे कि वे उन बच्चों के लिए खाना बना दिया करें, क्योंकि बाहर से उन बच्चों के लिए खाना मँगाना बहुत महँगा पड़ेगा। 30 की इस संख्या पर आनंद बहुत सोच-विचारकर पहुँचे थे। वे पहले यह संख्या 50 रखना चाहते थे, लेकिन यह उनकी क्षमता से बाहर थी। इसलिए उन्हें लगा कि वे 30 बच्चों का खर्चा ही वहन कर सकते हैं।

‘माँ, इसके बारे में सोचना। तुमने तो शिक्षा की ताकत देखी है। आज हम आराम से इसीलिए रह पा रहे हैं, क्योंकि पिताजी ने हमें पढ़ाने के लिए कड़ी मेहनत की थी। जिसके पास पैसा न हो, उसके पास दुर्भाग्य से बचने का एकमात्र तरीका पढ़ाई का ही है। जब आप एक बच्चे को पढ़ाते हो तो एक पूरे गाँव का भला होता है।’

उनकी माँ ने उनकी ओर गर्व से देखा, लेकिन कोशिश की कि उन्हें इसका आभास न हो पाए—‘तुम्हें लगता है कि तुम कोई महामानव हो! ये सब तुम कैसे कर पाओगे?’ अब तक पूरी बातचीत को सुनता रहा प्रणव अब बोल उठा, ‘भैया, आप उनका नाम ‘सुपर 30’ रख सकते हैं।’ जब जयंती देवी ने देखा कि वे दोनों अपने विचार पर दृढ हैं तो वे बोलीं, ‘ठीक है। देखती हूँ, मैं क्या कर सकती हूँ।’ आनंद ने उठकर अपनी माँ के पैर छू लिये। वे जानते थे कि उनके इस अभियान में माँ की भूमिका अहम होगी।

माँ ने जो कुछ कहा था, उसकी बदौलत ही ‘सुपर 30’ नाम चुन लिया गया। प्रणव तो आनंद की इस योजना का पूरी तरह से समर्थन कर रहा था। उसने इस कार्य का प्रशासनिक हिस्सा सँभालने का वादा किया और आनंद से उसने कहा कि वे कोर्स और चयन का मापदंड तैयार करने पर ध्यान दें। अभी सामान का हिसाब भी करना था। ऐसी जगह की भी जरूरत थी, जहाँ वे 30 छात्र-छात्राओं को रख सकें।

‘इसे दिन का स्कूल जैसा रखना होगा, भैया? और इन सारे बच्चों को अपने साथ ही ठहराने की व्यवस्था करनी होगी।’ प्रणव ने आनंद से कहा।

‘मैं नहीं चाहता कि मेरे विद्यार्थी केवल पटना के ही हों। बिहार के गरीब गाँवों से आनेवाले विद्यार्थी पटना में रहने का इंतजाम नहीं कर पाएँगे। वे तभी पढ़ाई कर पाएँगे, जब उन्हें पैसों की चिंता न रहे।’ आनंद ने प्रणव से कहा।

आनंद का दिमाग इस तेजी से बढ़ रहे विचार में पूरी तरह से जुट गया। हालाँकि उन्होंने प्रणव से यह बात कही नहीं, लेकिन उन्हें लगा कि बच्चों को उनके रोजमर्रा के दयनीय जीवन से अलग रखने और पढ़ाई के लिए उचित माहौल देने की जरूरत है। वे चाहते थे कि अगर इन बच्चों को स्कूल और जीवन में अच्छा प्रदर्शन करना है तो इनको उनकी निगरानी में रहना चाहिए; क्योंकि उन्हें बहुत सारी काउंसलिंग और आत्मविश्वास विकसित करने की जरूरत पड़ेगी।

वर्ष 2002 की वसंत ऋतु में आनंद के मकान के बगल में टिन की छतवाला एक छोटा सा छप्पर तैयार किया गया। लकड़ी का ब्लैकबोर्ड तैयार किया गया और साधारण मेज-कुरसियाँ लगाई गईं और इस तरह से कक्षा तैयार हो गई। ये सारी तैयारियाँ प्रणव ने ही कीं। इसके बाद उन्हें 30 विद्यार्थियों के रहने की व्यवस्था करनी थी। शुरू में उन्होंने शांति कुटीर के पास कई सारे स्थान तलाश किए, जहाँ विद्यार्थी समूह में रह सकें। (बाद में जब आनंद को लगा कि सभी विद्यार्थियों का एक साथ रहना उपयोगी होगा तो उन्होंने बाद के वर्षों में विद्यार्थियों के लिए एक छात्रावास बनवाया।) आखिर में आनंद के चिकित्सक मित्र डॉ. बी.के. प्रसाद जरूरत पड़ने पर उन छात्रों का इलाज मुफ्त में करने पर तैयार हो गए।

ऐसा लगने लगा था कि सुपर 30 का अद्भुत और उत्साही प्रयोग अब धीरे-धीरे साकार होता जा रहा है।

तय हुआ था कि आनंद की माँ जयंती देवी सुपर 30 के विद्यार्थियों के लिए झोंपड़ी के कोने में छोटे से रसोईघर में दोनों समय का खाना बनाया करेंगी। रसोई में कड़ाहियाँ और खाना पकाने के बरतन जुटाए गए। भोजन सादा लेकिन पोषक था, ताकि विद्यार्थी भूखे न रहें और पढ़ाई से उनका मन विचलित न हो।

प्रणव ने इस परियोजना के बिजनेस मैनेजर और सुपरवाइजर का काम सँभाला और शिक्षक का काम तो आनंद को सँभालना ही था।

कहने की जरूरत नहीं कि यह परियोजना किसी प्रारूप की तरह ही थी, लेकिन आनंद के संक्रामक उत्साह ने धीरे-धीरे सबको जकड़ लिया। उन्हें विश्वास था कि प्रोग्राम का खर्चा रामानुजन स्कूल ऑफ मैथेमेटिक्स की आय से निकल आएगा और उन्हें किसी से चंदा नहीं माँगना पड़ेगा, न ही किसी का चंदा स्वीकारना पड़ेगा। हाँ, लोग सहायता करने के इच्छुक जरूर थे। लेकिन आनंद को लगता था कि कहीं ऐसा न हो कि सुपर 30 के सफल होने पर उस पर किसी तरह के भ्रष्टाचार के आरोप लगने लगें और इस सबसे बचने का सबसे बेहतर तरीका यही था कि किसी से कोई धन न लिया जाए, चाहे वह कोई भी हो। यह कोई

बहुत गर्व की बात भी नहीं थी। यह दिखाने का दृढ़ निश्चय दिखाना ही एकमात्र कारण नहीं था कि उनकी देखरेख का कारण केवल धन ही नहीं था, जिसके लिए समाज में एक दृढ़ निश्चयी व्यक्ति लगा था। अगर उन्हें सफलता मिलनी थी तो वह केवल उनकी कड़ी मेहनत के बल पर मिलनी थी।

सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण बात एक टेस्ट को तैयार करना था, जिससे 30 सुयोग्य विद्यार्थियों का चयन हो सके। आनंद और उनकी टीम का पक्का मत था कि सबसे होनहार और सबसे जरूरतमंद विद्यार्थी ही सुपर 30 के अवसर का लाभ उठा सकें। यह तय करने के मापदंड थे स्वाभाविक अभिरुचि, सीखने की ललक और हर परिस्थिति में कड़ी मेहनत करने की इच्छा। इतने सालों में आनंद ने देखा था कि अनेक प्रतिभाशाली छात्र सही शिक्षा के लिए पटना आते थे, लेकिन पैसों के अभाव में वापस गाँव जाने पर मजबूर हो जाते थे और नतीजतन उन्हें सही अवसर नहीं मिल पाते थे। जब उन्होंने सुपर 30 की परियोजना शुरू की, तब उनके दिमाग में यही बच्चे थे।

कई बार आनंद अपने कार्य में रुके और उन्होंने विचार किया, *'क्या यह सचमुच हो पाएगा? अभी तो हर कोई उत्साहित है और इसके उद्घाटन में लगा हुआ है; लेकिन क्या इतना ही पर्याप्त होगा? अगर यह बुरी तरह से असफल रहा तो क्या होगा? अगर इन लोगों की आपस में नहीं पटी और ये साथ में नहीं रह पाए तो? आखिरकार इन तीसों विद्यार्थियों की भलाई का जिम्मेदार तो मैं ही हूँ न।'* और इसी तरह के अन्य विचार मन में आते रहे।

हालाँकि, उनके इस संशयों के बावजूद कुछ तो ऐसा था, जो उन्हें आगे बढ़ाता रहा। उन्हें अपने पिता के उस कोट की याद आई, जिसे उन्होंने बड़े प्यार से अपने बेटे के लिए अल्टर करके फिट करवाया था। आनंद उस कोट को पहनने के सुपात्र बनना चाहते थे। वे सोचते थे, *'अगर चार या पाँच विद्यार्थी भी परीक्षा में पास हो गए तो यह कुछ नहीं से तो बेहतर ही होगा। उनके पास खोने के लिए तो कुछ है नहीं। इसी तरह मेरे पास भी खोने के लिए कुछ नहीं है।'*

आनंद अब प्रणवकी सहायता से चयन परीक्षा के काम में जुट गए और आरंभिक स्क्रीनिंग प्रक्रिया लागू की गई। टेस्ट में कुल 30 प्रश्न रखे गए—भौतिक-शास्त्र, रसायन-शास्त्र और गणित से दस-दस। इनमें एक सही विकल्पवाले वस्तुनिष्ठ प्रश्न थे और यह सब एन.सी.ई.आर.टी. के पाठ्यक्रम पर आधारित थे। उन्होंने रामानुजन स्कूल के विद्यार्थियों को इस कार्यक्रम के बारे में बताया और अपने जाननेवालों के बीच इसका प्रचार करने को कहा। टेस्ट मई में रखा गया और सुपर 30 के तीस स्थानों के लिए सैकड़ों उम्मीदवारों ने आवेदन किए।

कार्यक्रम के आरंभिक वर्षों में परीक्षा की व्यवस्था करना अपेक्षाकृत आसान था; लेकिन सात-आठ चक्रों के बाद इसका आकार बढ़ता गया, क्योंकि पूरे उत्तर भारत से अधिक-से-अधिक विद्यार्थी सुपर 30 में दाखिले के लिए आने लगे। वर्ष 2002 में केवल एक परीक्षा केंद्र रखा गया था; लेकिन आज पटना, बनारस, दिल्ली और अन्य जगहों समेत पूरे उत्तर भारत में अनेक परीक्षा केंद्र बनाए जाते हैं। चयन परीक्षा के लिए फीस बहुत ही मामूली, 50 रुपए प्रति आवेदक रखी गई और इससे प्राप्त पैसे को परीक्षा भवन के किराए, प्रश्नपत्र

की छपाई और अन्य खर्चों में खर्च किया जाता है। परीक्षा से एक तरह से कोई आमदनी नहीं होती, बल्कि कभी-कभी तो घर से खर्च करना पड़ जाता है।

आनंद और उनके कुछ विश्वस्त लोगों ने जाँच करके सुपर 30 के पहले बैच के विद्यार्थियों का चयन किया। बीस दिन बाद शांति कुटीर के दरवाजे पर एक कागज चिपकाया गया। इस पर 30 विद्यार्थियों के नाम हाथ से लिखे थे। चयन परीक्षा का परिणाम घोषित हो चुका था। तो, इस तरह से शुरुआत हुई।

बाहर के गेट पर नोटिस लगने के कुछ ही दिनों के बाद कक्षाएँ लगनी शुरू हो गईं। विद्यार्थी अपने रहने-सोने-खाने और कक्षा की जगह देखने आ पहुँचे। विद्यार्थियों को पहले सबक के रूप में समय प्रबंधन सिखाया गया, क्योंकि समय बहुत कम था और परीक्षाओं के लिए करने को बहुत कुछ था। आई.आई.टी. जे.ई.ई. की परीक्षा ठीक एक साल बाद थी और इसमें सफलता पानी थी तो इन उत्साही युवा विद्यार्थियों के लिए एक-एक मिनट कीमती था।

आरंभ में अधिकतर विद्यार्थियों को नए परिवेश में ढलने में दिक्कत आई। उनका उनके परिवारों से बहुत कम संपर्क था और सबसे ज्यादा दिक्कत यह थी कि वे एकदम नई जगह पर थे।

अनजान विद्यार्थियों और शिक्षकों का भी मामला अनसुलझा था। जब भी अनजाने लोगों का कोई समूह लाया जाता, सुपर 30 के विद्यार्थियों व कर्मचारियों को अभ्यस्त होने और आरंभिक झिझक दूर करने में कुछ समय लगता था। भाग्य से, उन सबका एक समान मकसद था और इस सबके बारे में सोचने के लिए बहुत ही कम समय था।

मुश्किलों से उबरना सुपर 30 के लिए कठिन नहीं था। मनोरंजन के रास्ते बहुत कम थे और अधिकतर विद्यार्थियों के पास समय या पैसा ही नहीं था कि वे किसी और जगह अपना दिमाग लगा पाएँ। अपवाद थे तो बस, भारत और पाकिस्तान के क्रिकेट मैच; तब वे जरूर आनंद को चकमा दे जाते और स्कोर पता करने की यथासंभव कोशिश करते रहते। पाठ्यक्रम के साथ-साथ चलने के लिए देर रात तक पढ़ना जरूरी था; लेकिन ऐसे में अगले दिन सुबह उठना चुनौती की तरह होता था। इसलिए विद्यार्थियों के पास बरबाद करने के लिए समय बचता ही नहीं था। विद्यार्थियों को खुद पढ़ाई तो करनी ही होती थी, साथ ही उन्हें दिए गए पाठ भी निपटाने होते थे। समय प्रबंधन उनके लिए बड़ी प्राथमिकता बन गया था। स्वाभाविक रूप से, कुछ ने यह काम ज्यादा अच्छे तरीके से किया।

अपनी तरफ से आनंद और प्रणव ने अपनी फुरसत का सारा समय विद्यार्थियों के साथ बिताने लगे और उनकी कठिनाइयों और समझने में आ रही दिक्कतों को सुलझाने लगे। दोनों भाई सफलता पाने के बहुत इच्छुक थे और उनके व्यावहारिक तरीके सबसे अच्छे समझ आ रहे थे।

आनंद गणित पढ़ाते थे और उनके पुराने विद्यार्थी भौतिक-शास्त्र, रसायन-शास्त्र पढ़ाते थे। प्रणव ने स्कूल के प्रबंधन की जिम्मेदारी सँभाल ली।

पहले कुछ सप्ताह बाद जब हर कोई एक-दूसरे से और सुपर 30 से भी ज्यादा परिचित हो गया तो दिनचर्या नियमित हो गई और ये वर्षों से चली आ रही दिनचर्या के लगभग एक समान ही थी।

सामान्य दिन छात्रों के कक्षा में जुटने से शुरू होता और पिछले दिन के पाठ व समस्याओं की चर्चा होती। भोजन के बाद विद्यार्थी कक्षा में जुटते और पिछले दिन के पाठ और समस्याओं पर चर्चा करते। आनंद या कोई अन्य शिक्षक उनके साथ रहते और उस दिन का पाठ शुरू करते। आज भी सुपर 30 में दिन इसी तरह से शुरू होता है।

अब प्रोग्राम का दूसरा सप्ताह शुरू हो चुका था। आनंद विद्यार्थियों के समूहों से मिलने और उनकी समस्याओं पर चर्चा करने पहुँचे। अपने शिक्षक को आता देख बच्चे शांत होकर अपनी बेंचों पर बैठ गए। क्लास रूम में आगे अपने स्थान से आनंद को कक्षा के सभी विद्यार्थी दिख रहे थे। बच्चों को उनकी पढ़ाई कितनी समझ आ रही है, यह देखना उन्हें पसंद था। गरमी के दिन थे, इसलिए आनंद कुमार पसीना पोंछने के लिए अपने कंधे पर एक तौलिया रखे थे।

आनंद के पढ़ाने की शैली उत्साही और बहुत प्रभावशाली थी। वे अकसर हाथों के इशारों का प्रयोग करते और चॉक रख देते। बिल्कुल शुरुआत से ही उन्होंने प्रश्न पूछकर चुनौतीपूर्ण विधियों का माहौल तैयार किया। कक्षा में वे बार-बार यह लाइन दोहराते थे, ‘‘क्या इस समस्या को सॉल्व करने का कोई तरीका है?’’ वे विद्यार्थियों को समस्या की मूल प्रकृति समझना और फिर उसे हल करने के विभिन्न तरीके सिखाते। वे उनसे कहते, ‘‘जीवन की समस्याओं को सुलझाने का केवल एक ही तरीका नहीं होता और भी तरीके होते हैं। इसी तरह से गणित में भी होता है।’’

पाठों को अधिक मजेदार और आकर्षक बनाने के लिए आनंद अपने तरीके में दो काल्पनिक चरित्रों का इस्तेमाल करते थे। पहला रिक्की था, जो जीन्स और ब्रांडेड कपड़े पहने शहरी लड़का था, जो प्रभावशाली पृष्ठभूमि से आता था। दूसरा लड़का भोलू ग्रामीण पृष्ठभूमि से आया था और परंपरागत कुरता-पाजामा पहनता था। रिक्की अंग्रेजी धारा-प्रवाह बोलता था, जबकि भोलू हिंदी और बिहार की स्थानीय बोलियों में ज्यादा सहज होता था। रिक्की जाने-माने निजी स्कूल में पढ़ा था, जबकि भोलू ने गाँव के स्कूल से पढ़ाई की थी। सुपर 30 के विद्यार्थी अपने को भोलू के ज्यादा निकट पाते थे। ऐसे में आनंद एक मल्टीमीडिया प्रोजेक्टर पर दिखाते थे कि एक सवाल ब्लैकबोर्ड पर रिक्की और भोलू के सामने प्रकट होता है। रिक्की उस सवाल को जल्दी से हल कर देता है और सवाल हल करने में जूझ रहे भोलू का मजाक उड़ाता था। वह कहता था, ‘‘देखो, मैंने इसे हल कर

दिया है। तुम सरकारी स्कूलों के बच्चे तो बहुत मंद होते हो। न तो तुम्हें ढंग की शिक्षा मिली है और न अच्छी कोचिंग।''

भोलू उसको ललकारते हुए कहता था, ''तुम्हें क्या लगता है, तुम अपनी पढ़ाई के कारण यहाँ आ पाए हो? क्या पढ़ाई केवल बड़े स्कूलों में ही होती है? यह तो समर्पण और लगन से हासिल होती है। देखो, मैंने भी यह सवाल हल कर दिया है। हालाँकि, मैंने इसी सवाल को बीजगणित, त्रिकोणमिति, कैलकुलस, सम्मिश्र संख्याओं और रेखागणित के जरिए हल किया है और इसे अनेक अन्य विधियों से भी हल कर सकता हूँ।'' इसके बाद भोलू उस सवाल का सामान्यीकरण करता है; क्योंकि वह आई.आई.टी. की तैयारी कर रहा है और उसकी पृष्ठभूमि विज्ञान की है। उस सवाल से संबंधित भोलू अन्य सवाल भी तैयार कर सकता है। इसके बाद भोलू रिक्की से पूछता है, ''अब बताओ, हीरो कौन है, तुम या मैं?'' आनंद का मकसद यह दिखाना था कि दोनों में फर्क होने के बावजूद जहाँ सीखने और सफलता पाने की बात आती, भोलू रिक्की जैसा ही तेज था और संभवतः उससे बेहतर ही था, क्योंकि वह केवल अपने आप पर निर्भर था। जहाँ रिक्की महँगी-महँगी किताबों, कंप्यूटर और अन्य इलेक्ट्रॉनिक गजट की मदद लेता था, जिनकी वजह से उसे समझने में आसानी होती थी, जबकि भोलू और सुपर 30 के विद्यार्थी केवल अपने दिमाग का इस्तेमाल करते थे और मदद के लिए एक-दूसरे पर ही निर्भर थे। आनंद का लक्ष्य विद्यार्थियों में आत्मविश्वास पैदा करके उन्हें यह बताना था कि अच्छे स्कूल या कंप्यूटर न मिलने या अंग्रेजी न आने के बावजूद वह आई.आई.टी. जे.ई.ई. पास कर सकते हैं, वह भी बहुत अच्छे रेंक से। वे चाहते थे कि विद्यार्थी बड़े सपने देखें और उन्हें साकार करने के लिए खुद प्रयास करें। वे उन्हें यह भी समझाने की कोशिश करते थे कि मानव मूल्य और गरिमा का आकलन पैसे से तय नहीं किया जा सकता है और हर किसी के साथ आदर से व्यवहार करना चाहिए और सबको मौके दिए जाने चाहिए।

विद्यार्थियों को समझने में आनंद के सफल होने का कारण उनकी गणितीय अवधारणाओं की स्पष्टता, हॉलमार्क क्वालिटी का होना, समस्या समाधान करनेवाला रवैया और विस्तार से समझाने पर जोर रहा। वे जानते थे कि विद्यार्थियों को आई.आई.टी. जे.ई.ई. में सफलता दिलाने के लिए अध्यापन का प्रभावशाली तरीका तैयार करना होगा। उनकी शैली विद्यार्थियों को समझ में आती थी और वह उनकी बात समझने में और उनसे संवाद करने में आसानी महसूस करते थे। अध्यापन तकरीबन पूरे दिन चलता रहता था। सुबह की कक्षा होने के बाद जयंती देवी अपने सहायकों के साथ विद्यार्थियों को भोजन परोसतीं, जिसमें अधिकतर चावल, चपातियाँ, दाल और सब्जी रहती थी। जयंती देवी हर बात का ध्यान रखती थीं और अच्छा पौष्टिक भोजन तैयार करती थीं, ताकि बच्चे पूरे दिन अच्छे तरीके से पढ़ाई कर सकें। बच्चों के मुँह से भोजन के बारे में बस यही निकलता था—बढ़िया। सुपर 30 का हर विद्यार्थी आज भी यही कहेगा कि उस स्वादिष्ट भोजन से हमेशा

उनका मन तृप्त हो जाता है। अनेक बच्चों के लिए यह भोजन उससे एकदम अलग होता, जो वे अपने जीवन में अधिकतर करते रहे हैं। कक्षा से लगी छोटी सी रसोई में तैयार भोजन और लकड़ियों की आग से परेशानी भी थी; क्योंकि गीली लकड़ियों से निकलनेवाला धुआँ अकसर कक्षा में घुस जाता था। हालाँकि, बरतन और कप-प्लेटें एकदम चमचमाते हुए साफ रहते थे और जयंती देवी अपने कमजोर हाथों से ही अधिकतर काटने, पकाने और सफाई करने का काम करती रहती थीं। यह पूरी प्रक्रिया दिन में दो बार, सप्ताह में सातों दिन की जाती थी।

उनके इस काम के कारण वर्षों से विद्यार्थी जयंती देवी को 'माँ' कहकर पुकारते हैं। वर्ष 2002 के शुरुआती दिनों में उन्होंने अपने को पूरी तरह से झोंक दिया, ताकि बच्चों को किसी तरह की कमी न महसूस हो। सुपर 30 की सफलता में वे उसी तरह से लगी हुई थीं, जिस तरह से उनके बेटे लगे हुए थे। अब अपने बच्चों को अच्छा प्रदर्शन करते देख उनका हृदय गर्व से फूल जाता है। वे शांति कुटीर से बहुत ही कम बाहर जाती हैं, लेकिन सुपर 30 से निकलने के बाद यहाँ के विद्यार्थी दूर-दूर की यात्रा करते हैं और उनके लिए यही काफी है। अकसर पूरा परिवार ही खाने के दौरान विद्यार्थियों के बीच आ जाता है और तब ऐसा लगता है जैसे एक बड़ा परिवार एक साथ इकट्ठा हो और जयंती देवी सबकी देखभाल कर रही हों।

कक्षा का पूरा परिसर, रसोई और आँगन करीब 600-700 वर्ग फीट का है। इतने साधारण निवास में चलनेवाले शायद ही किसी अन्य संस्था ने इतने सारे छात्रों को आई.आई.टी. जे.ई.ई. में सफलता दिलाई होगी। इस छोटी सी सुंदर जगह की सुंदरता बढ़ाने के लिए एक छोटा सा बगीचा भी है, जिसमें कद्दू लगे रहते हैं।

दोपहर के भोजन के बाद कुछ और पढ़ाई होती है, लेकिन 3 बजे तक विद्यार्थी कक्षा से चले जाते हैं। अधिकतर तो पास के छात्रावास में ही अपने-अपने कमरों में जाकर आराम करते हैं। शुरुआती दिनों में, आनंद और प्रणव ने जहाँ तक संभव हुआ, पास में ही जगह का इंतजाम किया था, लेकिन बाद में उन्होंने एक छात्रावास बनवा दिया, जो अभी पूरा तो नहीं है, लेकिन बुनियादी सुविधाएँ वहाँ सारी हैं। अब ईंटों से बनी वह इमारत बहुमंजिली हो चुकी है, जिसमें सँकरी और फिसलनदार सीढ़ियाँ भी हैं। करीब पंद्रह विद्यार्थी एक समय पाँच कमरों में रहते हैं। हर विद्यार्थी को लकड़ी का एक साधारण बिस्तर दिया जाता है, जिस पर पतली चादर बिछी रहती है। तकिया कुछ इंच का ही होता है और विद्यार्थियों के सिर को सहारा देने में मुश्किल से काम आ पाता है; जबकि उनके सिर में ही उनकी सारी प्राथमिक संपत्ति होती है। घरों में जिस तरह से ये विद्यार्थी रहते आए हैं, उसके हिसाब से अधिकतर के लिए ये बुनियादी सुविधाएँ ही किसी विलासिता से कम नहीं हैं। उन्हें तो बस, नलों में पानी आता रहे और शौचालय ठीक से काम करता रहे, यही काफी होता है।

दोपहर के अंत और शाम को विद्यार्थी मिलकर गणित व विज्ञान की समस्याएँ हल करते हैं, जो उन्हें अभ्यास के लिए दी जाती हैं। अकसर ये लोग कक्षा के पीछे, मैदान में बैठे गृह कार्य करते और सवाल हल करते पाए जाते हैं, जिन्हें उन्हें अगले दिन अध्यापकों को दिखाना पड़ता है। उनकी कॉपियाँ नोट्स, कैलकुलेशन, सूत्र और संक्षिप्त टिप्पणियों से भरी रहती हैं। पास की सड़क की हलचल और घटनाएँ उनका मन खींचती हैं, लेकिन उनकी विचार तंद्रा नहीं टूटती। किसी-न-किसी तरह वे यह समझते हैं कि उन्हें यह दुर्लभ मौका मिला है और कुछ इसे चौपट करने पर तुले हैं।

इनमें से किसी भी छात्र के पास कंप्यूटर नहीं होता, लेकिन उससे उन्हें कुछ फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि वे जो सीखना-समझना चाह रहे हैं, उसमें कंप्यूटर कोई मदद नहीं करता। इसके बजाय, अगर वे साथ पढ़ाई करें, एक-दूसरे से अपने विचार व्यक्त करें और आई.आई.टी. जे.ई.ई. में सफलता के लिए मददगार पाठ्य सामग्री से एक-दूसरे की मदद करें तो बेहतर होता है—जैसे कि वे एक साथ पाठ्यक्रम को जी रहे हों।

लोग आनंद से पूछते हैं, ‘‘सुपर 30 की सफलता का राज क्या है?’’

इसका जवाब है, यहाँ पर मेल-जोलवाले माहौल में हर कोई आकर्षित होता है, जिसमें विद्यार्थी आपस में बात करते हैं और जीवन में एक बार अपने भाग्य को सँवारने के लिए उनको दिए एक समान लक्ष्य पर केंद्रित रहते हैं। वे अपने अभ्यास पूरे करने के अलावा और कुछ सोचते तक नहीं और देर तक जागते रहते हैं। शाम को कभी कोई विद्यार्थी इलायचीवाली चाय बना लेता है, जिससे उन्हें नींद भगाने और देर रात तक जागने में मदद मिलती है। जब कोई प्रश्न उन्हें घेर लेता है तो वे समूह में इकट्ठे हो जाते हैं। जब तक कोई उत्तर मिल नहीं जाता है, तब तक वे आपस में तर्क-वितर्क करते रहते हैं और एक-दूसरे को टोका-टाकी करते रहते हैं। थक रहे दिमागों में रक्त-संचालन करते रहने के लिए वे लोग उठ जाते हैं, कमरे में ही टहलने लगते हैं और कभी-कभी एक-दो चुटकुले भी सुना लेते हैं। इसके बाद फिर से अपने सवालों में जूझने लगते हैं।

सामूहिक गतिविधियों के जरिए सीखने की ताकत सुपर 30 में हमेशा रही और है और समूह के कारण ही विद्यार्थियों का विकास निजी रूप से भी ज्यादा होता है। कुछ सप्ताह में ही सुपर 30 का कार्यक्रम सामान्य से अलग दिखने लगता है और शरमीले विद्यार्थी अपनी दृढता दिखाने लगते हैं। उनका सामाजिक मेल-जोल बहुत ज्यादा बढ़ जाता है। उनकी कड़ी मेहनत का फल दिखने लगता है। कठिन सवालों को हल करना कुछ आसान होने लगता है। एक साथ पलते-बढ़ते ये विद्यार्थी ऐसे लगते हैं जैसे गंगा के किनारे किसी उपजाऊ जमीन पर फसल लहलहा रही हो। जब वे किसी कठिन समस्या से जूझ रहे होते हैं, तब उनके चेहरों पर एकाग्रता और उत्साह दिखना आम हो जाता है और जब वे समस्या के समाधान में सफलता पा लेते हैं तो उनके चेहरे भी विजयी मुसकान के साथ खिल जाते हैं। वे एक-दूसरे की सहायता करते हैं और आपसी भलाई के लिए एक-दूसरे के साथ लगे

रहते हैं। वे चाहे कक्षा में हों या पीछे छात्रावास में—आनंद तो हर जगह उन्हें प्रेरित करने, उकसाने, प्रोत्साहित करने, बात करने, उनकी समस्या सुनने, पढ़ाने और आमतौर पर पिता का संरक्षण देने के लिए हमेशा मौजूद रहते ही हैं। जब भी बच्चे कुछ कमजोर पड़ने लगते हैं तो वे आनंद की ओर ही देखते हैं। आनंद को बच्चों की पारिवारिक पृष्ठभूमि का पता होता है; सुपर 30 तक आने में उन्होंने जो संघर्ष किया है, उसके बारे में पता है। पिछले तेरह सालों में उन्होंने सुपर 30 के करीब 390 विद्यार्थियों को पढ़ाया है और हैरत की बात यह है कि उन्हें उन सबके नाम, परिस्थितियाँ, परीक्षा में किया प्रदर्शन और आज की उनकी स्थिति के बारे में सबकुछ पता है।

अगर उन्हें लगता है कि विद्यार्थियों का जोश कम हो रहा है, वे कुछ ढीले पड़ रहे हैं तो आनंद कहते हैं, ‘‘आप लोग गरीबी से आए हो, मैं भी गरीबी से आया हूँ। हमारी परिस्थितियों में अंतर हो सकता है, लेकिन आशा और आकांक्षाओं के मामले में कोई अंतर नहीं होना चाहिए। अपने आपको ही नहीं, अपने परिवार और अपने समाज को भी गरीबी के चंगुल से निकालना आपके ऊपर है। आप निराश नहीं हो सकते।’’ स्वामी विवेकानंद को याद करते हुए आनंद विद्यार्थियों से कहते हैं, ‘‘उठो, जागो! और तब तक मत रुको, जब तक कि तुम्हें अपना लक्ष्य हासिल न हो जाए।’’

ऐसे समय जब विद्यार्थी यहाँ होते हैं तब उनका परिवारों से संपर्क बहुत कम होता है। शुरुआती दिनों में तो कोई मोबाइल फोन भी वहन नहीं कर पाता था और आज भी केवल पाँच या छह विद्यार्थियों के बीच केवल एक ही मोबाइल होता है, जिसका वे अपने घर बात करने के लिए किफायत से इस्तेमाल करते हैं। यह हैरत की बात लगती है कि ये लोग क्रिकेट, बॉलीवुड की फिल्में और युवाओं के सामान्य मनोरंजन के साधनों से भी दूर रहते हैं। लेकिन आनंद उनसे कहते हैं, जब वे कुछ बन जाएँगे तो फिर इस सबके लिए ढेर सारा समय मिला करेगा।

अब, यह एक निश्चित भरोसे की बात हो गई है कि अगर आपका चयन सुपर 30 में हो गया है और आप बढ़िया पढ़ाई करते हैं और सारी जरूरी चीजें सीख लेते हैं तो आपके आई.आई.टी. जे.ई.ई. में चयनित होने के बहुत अच्छे आसार होते हैं। हालाँकि, वर्ष 2002-03 के शुरुआती दौर में ऐसा कोई विश्वास नहीं था। विद्यार्थी तो नई जगह दाँव लगा ही रहे थे और उनका नेतृत्व करनेवाला भी असमंजस में था। हालाँकि, एक बार जब दिनचर्या नियत हो गई, समूची कवायद में एकाग्रता और सफलता समाहित हो गई, शिक्षकों के प्रयास शुरू हो गए, कड़ी मेहनत होने लगी तो आनंद ने वही दिनचर्या लागू कर दी, जो उन्होंने वर्ष 2002 में तैयार की थी। साल-दर-साल उस परिसर में आते हैं, सुपर 30 के कार्यक्रम में शामिल होते हैं और हर तरह की बाधाओं को पार करते हुए अपनी परीक्षाएँ पास कर जाते हैं। आनंद में वही उत्साह, वही प्रेरणा और वही कड़ी मेहनत का जज्बा बरकरार रहता है।

सर्दी का मौसम धीरे-धीरे निकलता जा रहा था और आनंद निकट आ रही प्रवेश परीक्षाओं की चिंता में देर रात तक जागते रहते थे। परीक्षाएँ वैसे थोड़ी दूर थीं, लेकिन आनंद को लगा कि परीक्षा पास करने के लिए जो कुछ भी जरूरी है, वह सबकुछ उन्हें आने लगा है। उन्हें लगा कि उनका पाठ्यक्रम संतोषप्रद है; लेकिन फिर भी उन्होंने रिवीजन पेपरों पर जोर दिया और विद्यार्थियों के लिए नए-नए तरीके सोचने लगे, जिनकी जरूरत कुछ माह बाद परीक्षाओं में पड़ने वाली थी।

हालाँकि सुबह जब वे कक्षा में थे, तभी वे फिर से उत्साहित महसूस करने लगे। कक्षा में आने के बाद से इन बच्चों ने काफी लंबा सफर तय किया था। आनंद उनकी प्रतिबद्धता और चुनौतियों के प्रति रवैए से बहुत ज्यादा प्रोत्साहित हुए।

परीक्षा तिथि की अवधि तक उन्होंने विद्यार्थियों के साथ एक-एक करके पढ़ाने और उनकी निजी समस्याएँ दूर करने के लिए अधिक-से-अधिक समय बिताना शुरू कर दिया। हालाँकि वे एक निस्स्वार्थ शिक्षक थे, लेकिन उन्हें अपने को साबित करना था।

साल भर तक इस विस्तृत सपने को बुनने और कड़ी मेहनत करने के बाद आखिरकार परीक्षा की तिथि आ गई। आई.आई.टी. जे.ई.ई. की परीक्षा पास करना सबसे मुश्किल काम माना जाता है। 15,00,000 विद्यार्थियों में से केवल 10,000 विद्यार्थी ही इसमें उत्तीर्ण होते हैं और आनंद ने सर्वाधिक आशावान् होकर भी यही सोचा कि उनके चार या पाँच विद्यार्थी यह परीक्षा पास कर सकेंगे।

परिणाम घोषित होने तक के दिन काफी तनावपूर्ण रहे। जब परिणाम आया तो आनंद को विश्वास नहीं हुआ! तनाव में तो वे काफी लंबे समय से थे, लेकिन कुछ समय के लिए तो एकदम स्तब्ध रह गए। उस समय उनके कुछ विद्यार्थी उनके साथ थे और इसके पहले कि उन्हें कुछ पता चल पाता, ये विद्यार्थी उनसे बुरी तरह से लिपट गए। अठारह विद्यार्थी पास हो चुके थे। अठारह! आनंद ने जब सर्वोच्च स्थान पानेवाले विद्यार्थी को देखा तो उनके शरीर में सिहरन-सी उठ गई। सर्वोच्च स्थान पानेवाला लड़का अभिषेक राज था। वही लड़का, जो अपनी माँ के साथ आया था और जिसकी जेब में एक पैसा नहीं था और उसने आलू की फसल आने पर फीस देने का वादा किया था।

जयंती देवी मुसकरा रही थीं और अपने चेहरे पर बहते आँसू पोंछने की कोशिश कर रही थीं। प्रणव बहुत उत्साह में था, 'मुझे पता था!' सभी सहायक कर्मचारी, पड़ोसी भी एक-दूसरे के गले लग गए और खुशी मनाने लगे, जिन्हें पता तक नहीं था कि क्या हुआ है। ऐसा लग रहा था जैसे भारत की टीम ने क्रिकेट विश्व कप में पाकिस्तान को फाइनल मैच में हरा दिया हो। कक्षा के 60 प्रतिशत विद्यार्थियों ने पहले ही प्रयास में परीक्षा पास कर ली थी! बाकी बचे 12 को भी प्रतिष्ठित संस्थानों में दाखिला मिल गया था।

जो कुछ हुआ, वह सब सचमुच अप्रत्याशित था। किसी को नहीं लग रहा था कि सुपर 30 को इतनी बड़ी सफलता मिलेगी। यह पहला प्रयास आनंद और उनका साथ देनेवालों के

लिए बहुत उत्साहवर्धक था। यह एक क्रांति की शुरुआत थी, जो कि बिहार के एक हिस्से को हिला देने वाली थी। जल्द ही भारतीय प्रेस, सरकार और आखिरकार अंतरराष्ट्रीय मीडिया को जैसे ही इसके बारे में पता चला, सबके सब इस जादू को जानने के उत्सुक हो उठे, जो आनंद कुमार ने कर दिखाया था।

छात्र के मुख से

नाम : शिवांगी गुप्ता
सुपर 30 बैच : **2012-13**
संस्था एवं विषय : केमिकल इंजीनियरिंग, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, रुड़की
वर्तमान पेशा : छात्रा

मैं कानपुर के पास एक गाँव के एक निर्धन परिवार से आती हूँ। मेरे पिता का समाचार पत्र-पत्रिकाओं का एक स्टॉल है और हमारे परिवार में पाँच सदस्य हैं। मैंने सेकंडरी की पढ़ाई सरकारी स्कूल से की। मुझे सुपर 30 के बारे में पता चला और मेरा सौभाग्य रहा कि मैंने इसकी चयन प्रक्रिया पास कर ली, और पटना में मैंने आई.आई.टी. जे.ई.ई. की तैयारी शुरू कर दी।

सुपर 30 के परिवेश के बारे में कहूँ तो मैं आनंद सर के घर पर रही और उनका परिवार मुझे घर की सदस्य की तरह ही मानता था। हमें सारी कोचिंग और रहने की जगह पटना में ही मुफ्त में दी गई। पूरा साल बेहद यादगार रहा, जिसमें बहुत कुछ सीखने को मिला और तरह-तरह के अनुभव हुए।

हमारी रोज थ्योरी की क्लासें होती थीं और हमें घर पर करने के लिए एसाइनमेंट दिए जाते थे। आनंद सर कक्षा में बहुत प्रोत्साहित करते थे। उनकी उपस्थिति मात्र और पुराने छात्रों की सफलता की कहानियाँ ही हमारे लिए नैतिक बल और प्रेरणा का स्रोत थीं, जिनकी वजह से हम आगे बढ़े।

उनके पढ़ाने के तरीके के बारे में कहूँ तो वे इस बात पर जोर देते थे कि हम लोग समस्या को विभिन्न कोणों से देखें और एक ही सवाल को कई तरह से हल करें। थ्योरी की क्लास में वे हमें उदाहरण देते थे और एक ही समस्या को विभिन्न तरीकों से हल करते थे। इसी तरह से हमने रसायन-शास्त्र और भौतिक-शास्त्र की भी सुपर 30 में तैयारी की। शैक्षणिक ज्ञान के अलावा, वे छात्रों को अच्छा इनसान बनने के बारे में भी सिखाते थे।

और, आखिरकार मैंने आई.आई.टी. जे.ई.ई. की परीक्षा पास कर ली। वर्तमान में मैंने आई.आई.टी. रुड़की में केमिकल इंजीनियरिंग पढ़ रही हूँ और तृतीय वर्ष में हूँ।

आई.आई.टी. में पढ़ाई के लिए शुरू में मुझे फीस के खर्चे की दिक्कत हुई । सुपर 30 ने मुझे बैंक से पढ़ाई के लिए ऋण दिलवाने में मदद की और उसके लिए जरूरी गारंटी दी। इसके अतिरिक्त, आनंद सर सुपर 30 छोड़ने के तीन साल बाद भी हमेशा सहायता, प्रेरणा और मार्गदर्शन के लिए किसी-न-किसी तरह से साथ रहे।

आनंद सर से जो सहायता, शिक्षा और प्रेरणा मुझे मिली, मैं उसके लिए उनकी कृतज्ञ और आभारी हूँ।

6

आरंभिक कहानियाँ

वर्ष 2013 तक सुपर 30 की चर्चा राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय स्तर पर फैल चुकी थी। नेपाल सीमा के पास रहनेवाला अठारह साल का एक लड़का दो रात की यात्रा करके उस साल सुपर 30 में दाखिला लेने पहुँचा था। उस गरीब परिवार के बच्चे ने अपने बुजुर्ग माता-पिता को भरोसा दिलाया था कि वह सुपर 30 कार्यक्रम में शामिल करने के लिए आनंद कुमार को मना लेगा। स्कूल में उसने गणित में 90 प्रतिशत अंक पाए थे और अगर उसे माता-पिता के साथ खेतों में काम करने के बजाय ठीक से कक्षा में जाने का मौका मिलता तो वह कुछ और ज्यादा अंक ला सकता था। खैर, कोई बात नहीं। अब भी स्थिति नियंत्रण से बाहर नहीं हुई थी। सुपर 30 उसके और उसके परिवार की तकदीर बदल सकता था और उसका सपना उसी तरह से पूरा हो सकता था जिस तरह से उसने पटना तक की यात्रा ट्रेन से पूरी की थी।

हालाँकि दूरी केवल कुछ 130 किलोमीटर की ही थी, लेकिन उसे अठारह घंटे से ज्यादा लग गए। उसकी जेब में 500 से थोड़े ही ज्यादा रुपए थे, लेकिन उसके पास सपने पूरे थे कि कैसे वह इस कार्यक्रम के जरिए आई.आई.टी. जे.ई.ई. की परीक्षा पास करेगा और उसके बाद अच्छी नौकरी करेगा, जिससे वह करोड़ों रुपए कमा सकेगा। उसके सपने और नींद दोनों टूट गए, जब ट्रेन पटना स्टेशन पर जोर की आवाज और झटके के साथ रुकी। झटके से सबकी नींद खुल गई। एक छोटा सा बक्सा और पीठ पर एक थैला लिये यह युवक रामानुजन स्कूल की ओर बड़ी उम्मीद से बढ़ने लगा। करीब 9 बजे सुबह वह इस प्रसिद्ध स्कूल में पहुँचा। दूर से ही उसे मशहूर शिक्षक आनंद कुमार दिखाई दिए, जो एक मंच पर छात्रों के एक समूह को पढ़ा रहे थे। छात्र बड़े ध्यान से नोट्स बना रहे थे। पास के ट्रैफिक के शोरगुल का उन पर कोई असर पड़ता नहीं दिख रहा था। बच्चे ने आनंद कुमार के रुकने तक प्रतीक्षा की। उनसे मिलने की उम्मीद से उसके अंदर कुछ बेचैनी सी पैदा हो गई और उसे पसीना आने लगा—गरमी से नहीं बल्कि घबराहट के कारण। जब पढ़ाई रुकी, तब भी उसे काफी इंतजार करना पड़ा; क्योंकि ढेर सारे छात्रों ने आनंद को घेर लिया था और उनसे अपनी शंकाओं का समाधान कराने लगे थे। आखिरकार उस लड़के ने हिम्मत की और अपने को आगे धकेलते हुए, अपना दाहिना हाथ उठाते हुए वह चिल्लाया, ''आनंद सर!'' लड़के को न पहचानते हुए आनंद ने उसकी ओर हाथ हिलाकर अपने

खचाखच भरे ऑफिस में आने का इशारा किया। छात्रों के साथ अपनी बातचीत खत्म होने पर खुद भी ऑफिस पहुँचे। स्नेह के साथ उन्होंने लड़के से उसके आने का मकसद पूछा, हालाँकि वे देखते ही उसका मकसद समझ चुके थे।

"सर, मैं सुपर 30 में पढ़ना चाहता हूँ। मेरी मदद कीजिए। मैं कड़ी मेहनत करूँगा, यह मेरा वादा है आपसे।" आनंद कुमार इस तरह का अनुरोध रोज सुनते थे। एक दशक पहले से, जब से सुपर 30 शुरू हुआ था, तब से वे ऐसे हजारों अनुरोध सुन चुके थे।

उन्होंने लड़के की पृष्ठभूमि, स्कूल में नंबरों और आर्थिक स्थिति के बारे में जानकारी ली। अंत में वे रुके और लड़के की ओर सहानुभूति भरी नजरों से देखते हुए बोले, "मुझे लगता है कि तुम्हारा यहाँ आना बेकार गया। तुमने सुपर 30 की दाखिला परीक्षा के बारे में नहीं सुना था क्या? इस साल की परीक्षा तो हो चुकी है और सारी सीटें भर चुकी हैं।"

आनंद को उस लड़के की आँखों में तबाही का मंजर दिखाई दे रहा था; लेकिन वे उसे अगली दाखिला परीक्षा के बारे में जानकारी देने के अलावा कुछ नहीं कर सकते थे। मायूस होकर वह लड़का अपने घर लौट गया, लेकिन उसे यह सबक भी मिल गया कि अगर जीवन में कुछ पाना चाहते हो तो सही तरीके से प्रयास करना चाहिए और कड़ी मेहनत करनी चाहिए।

इस लड़के की कहानी जैसी थी, वैसी हजारों कहानियाँ आनंद के दिल में हर दिन तैरती रहती हैं। वे जानते हैं कि दहलीज पर आनेवाले हर विद्यार्थी की मदद नहीं की जा सकती; लेकिन इससे उसे वापस लौटा देने में जो दर्द महसूस होता है, वह तो कम नहीं हो जाता। वे जानते हैं कि यात्रा करके उन तक आनेवाले युवाओं की बड़ी संख्या के लिए गरीबी और भेदभाव से पीड़ित गाँवों और झुग्गियों से निकल पाने का एकमात्र रास्ता सुपर 30 ही है।

आनंद ने महसूस किया कि उनकी ओर से किसी भी तरह की कमी से शिथिलता की संस्कृति और कानून का अपमान होगा, जिससे वे सुपर 30 को बचाना चाहते थे। जब यह कार्यक्रम ही सहृदयता पर आधारित था तो इसमें किसी तरह की कठोरता रखने का कोई कारण नहीं था। वास्तव में आनंद का मानना था कि आई.आई.टी. जे.ई.ई. के परीक्षाओं में सुपर 30 की सफलता के लिए छात्रों की बुद्धि और योग्यता की परखकरनेवाले ये नियम और परीक्षण विधियाँ आवश्यक थीं। हर साल आशा लगाए सैकड़ों लड़के सुपर 30 में दाखिले के लिए परीक्षा देने आते हैं, ताकि उन्हें नामी शिक्षक आनंद कुमार से पढ़ने का मौका मिल सके और हर साल सैकड़ों छात्रों को निराश लौटना पड़ता है। अगर यह किसी हद तक अनुचित भी लगता है तो एक और जरूरी सबक सीखने की जरूरत है—जीवन अकसर निष्पक्ष नहीं होता, लेकिन अगर किसी में तकदीर बदलने की धुन है तो उसके लिए अवसर हमेशा रहते हैं।

यही लगन वर्ष 2009 में सुपर 30 में आनेवाले एक लड़के की सफलता का मुख्य आधार थी।

अनूप राज कुछ अलग तरह का छात्र था। विचित्र बात यह थी कि उसका जीवन बहुत कुछ आनंद कुमार के अपने जीवन की याद दिलाने वाला था। अनूप बिहार में बोध गया और नालंदा के बीच पड़नेवाले जिले औरंगाबाद के छोटे, गरीब और पहाड़ी गाँव चेव का रहनेवाला था। अनूप के पिता रामप्रवेश थोड़े-बहुत पढ़े थे; लेकिन जब अनूप छोटा था, तभी से कोशिश के बावजूद बेरोजगार थे। उसकी माँ मीना देवी गृहिणी थीं, जो अनूप और रामप्रवेश की जरूरतें पूरी करने की अपनी क्षमता भर कोशिश करती थीं। लेकिन घर में खाने-पीने के सामान की हमेशा कमी रहती थी जिसका मतलब आमतौर पर दाल और रोटी तक सीमित था। रामप्रवेश ने व्यापार में हाथ आजमाया था, लेकिन उसमें उन्हें सफलता नहीं मिली। चेव गाँव में भविष्य की कोई उम्मीद नहीं थी और घर की जरूरतें पूरी कर पाने में अक्षमता के कारण वे एक तरह से मानसिक संतुलन खो बैठे थे। अकसर वे सड़क पर काम की तलाश में भटकते हुए अपने आप बड़बड़ाते रहते।

बिहार में बुआई एवं कटाई के बीच महीनों का अंतराल होता है और इस बीच खेती पर निर्भर रहनेवाले लोगों के पास अधिकतर कोई काम नहीं रहता। रामप्रवेश की हालत भी ऐसी ही थी। एक बार अगस्त में शाम को बारिश के बीच अपने छोटे से मकान में बैठा अनूप रोने लगा।

‘‘क्या हुआ, बेटा?’’ अनूप की माँ मीना ने चिंतित होकर अपने बेटे से पूछा।

‘‘माँ, खाना।’’ अनूप ने रुआँसी आवाज में कहा।

लेकिन घर में तो खाने को कुछ था नहीं। बेबस मीना ने सारे डिब्बे-बरतन खँगाल डाले, लेकिन उन्हें कुछ नहीं मिला। वे थक-हारकर जमीन पर बैठ गईं और उनकी आँखों से आँसू बहने लगे। रामप्रवेश अपनी पत्नी और बच्चे की यह हालत सहन नहीं कर सके।

‘‘मैं कहीं से कुछ दाल और चावल लेकर आता हूँ। चिंता मत करो।’’ उन्होंने कहा।

‘‘कुछ चावल भर ले आओ। मैं उन्हें ही उबाल दूँगी और हम नमक के साथ खा लेंगे।’’ मीना ने अपने पति से कहा।

रामप्रवेश ने सिर हिलाया, लेकिन वह सोच में पड़ गए कि चावल मिलेंगे कहाँ से? बनिया ने भी उधार देने से मना कर दिया था।

‘‘तुम लकड़ियाँ सुलगाकर चूल्हा जलाओ और पानी उबलने के लिए रखो। मैं अभी आता हूँ।’’ वे मीना से यह कहकर घर से निकल गए।

चूल्हा जलाने और पानी उबलने के लिए रखने में अनूप की माँ को आधा घंटा लग गया। पानी उबलने लगा। लकड़ियाँ जलकर बुझ गईं और पानी ठंडा भी होने लगा; लेकिन रामप्रवेश लौटकर नहीं आए। माँ-बेटे को चिंता होने लगी। भूख के साथ-साथ अब उन्हें रामप्रवेश की भी चिंता होने लगी।

सुबह हुई तो अनूप की माँ ने अपने पति की तलाश के लिए निकलने का निश्चय किया।

अनूप के बचपन में औरंगाबाद जिले के गाँव एक और समस्या से ग्रस्त थे, जिसके बीच लोग मुश्किल से जी पाते थे और अब भी वही स्थिति है। वह इलाका पिछले पचास वर्षों से आतंकवाद और राजनीतिक हिंसा से पीड़ित रहा है। गरीबी, भुखमरी, रोजगार की कमी, भाई-भतीजावाद और भ्रष्टाचार के कारण वह इलाका माओवादी हिंसा की चपेट में आ गया है। अपने को नक्सलवादी कहनेवाले लोग सरकारी कर्मचारियों व पुलिसकर्मियों की लगातार हत्याएँ करते हैं और धनी लोगों का अपहरण करके उनसे फिरौती वसूल करते हैं। उनसे धोखा करनेवाले लोगों की हत्याएँ भी आम हैं। नक्सलवादी उस इलाके में लोगों के बीच ही रहते हैं, लेकिन बहुत कम लोगों को उनकी मौजूदगी का पता चल पाता है। उनके ठिकानों में लाल कपड़ा रहता है, जिससे लोग समझ जाते हैं कि वहाँ पर जाना खतरनाक हो सकता है। गाँववालों को उनके ठिकानों और कामों की जानकारी रहती है; लेकिन वे बताते कुछ नहीं, जिससे नक्सलियों को पकड़ना मुश्किल हो जाता है। जब लाल झंडे गायब हो जाते हैं तो गाँववाले अपने घरों से बाहर निकलते हैं और तब उनका जीवन सामान्य हो पाता है। यही बड़ा कारण है कि पर्यटक बोध गया और बुद्ध के अन्य पवित्र तीर्थों की यात्रा करने से बचते हैं।

उस दिन मीना नक्सलियों के इलाके में पहुँचीं और उन्होंने रामप्रवेश के बारे में पूछा। हालाँकि नक्सलियों ने कहा कि हम तुम्हारे पति का क्या करेंगे? वे स्थानीय पुलिस थाने गईं और पुलिस अधिकारी से गुहार लगाई; लेकिन उसने भी कोई मदद नहीं की।

''जिंदा होगा तो अपने आप लौट आएगा।'' पुलिस से यही जवाब मीना को मिला था। अनूप और मीना फिर कभी रामप्रवेश को नहीं देख पाए। बच्चे की उम्र तब केवल नौ साल की थी।

उस समय तक अनूप ने स्कूल जाना शुरू नहीं किया था। इसके बजाय, वह खेतों में या घर के काम में लगा रहता था।

उसको धान बुआई की बुनियादी समझ हासिल हो गई थी और वह परिवार की आय बढ़ाने के लिए बोरे पीठ पर लादकर खेतों से दुकानों तक लाने लगा था। गरमी और धूप में पेड़ की छाया में सोते हुए उसे कुछ आराम मिलता; लेकिन ज्यादातर दिन उसे काम और परिवार की रोजी-रोटी की तलाश में लगना पड़ता था। किताबों का उसके लिए कोई मतलब नहीं था; पर हाँ, कभी-कभार तसवीरें देखने के लिए वह उनके पन्ने पलट लेता था।

पिता के गायब होने से बच्चे के मन में कई सवाल रह गए थे और उसके मन में एक बड़ा खालीपन पैदा हो गया था। दिन और महीने गुजरते गए और वह अकसर अपने पिता को याद करता रहता था। पिता के गायब होने के बारे में जो सवाल उसके मन में थे, वे अनुत्तरित ही बने रहे। मीना ने बेटे को पढ़ाने का निश्चय किया और उसने उसका दाखिला गाँव के स्कूल में करवा दिया। स्कूल के कमरे बहुत छोटे थे और शिक्षक बहुत कम थे। बच्चे

टूटे-फूटे फर्श पर बैठा करते थे और कक्षा में पढ़ाई का स्तर भी फर्श की तरह का ही था—टूटा-फूटा और अनियमित।

दूसरी ओर, चेव गाँव में पढ़ाई के लिए बच्चे होना, शिक्षक होना और स्कूल की इमारत होना अपने आप में एक बड़ी सफलता मानी जाती थी। यहाँ तक कि एक दशक पहले भी ऐसी सुविधा अप्रत्याशित ही होती थी। गाँववाले शिक्षकों का बहुत अहसान मानते थे। वे उन्हें अनाज, सब्जियाँ, दूध, अंडे आदि भेंट करते रहते थे। अनूप भी उन बच्चों में शुमार हो गया और पढ़ाई-लिखाई में औसत होने के बावजूद वह कक्षा-7 तक पहुँच गया। उसी समय उसने पढ़ाई में ज्यादा दिलचस्पी लेनी शुरू कर दी। आँधी, बाढ़, बारिश—कोई भी बाधा हो—वह स्कूल जाना नहीं छोड़ता था। चेव की धूल भरी गलियों में अकेले जाते समय वह अकसर अपने पिता के बारे में सोचा करता था।

इसी दृढ़ निश्चय के साथ उसने बिहार बोर्ड की परीक्षा में 84.8 प्रतिशत अंक हासिल किए। हर तरह से ये अंक बहुत ही अच्छे थे। समूचे गाँव को उस पर गर्व हुआ। कई दिनों तक खुशियाँ मनाई जाती रहीं। इस अवसर पर मीना की आँखों में फिर से आँसू आए; लेकिन इस बार वे खुशी के थे। दुर्भाग्य से खुशी का माहौल ज्यादा दिन नहीं रहा, क्योंकि कड़वी सच्चाई फिर से हकीकत के रूप में सामने थी। पिता के मार्गदर्शन और धन के अभाव में आगे की पढ़ाई संभव नहीं थी। लेकिन अनूप और मीना भी हार मानने को तैयार नहीं थे। दोनों ने किसी तरह से पैसा जुटाकर इतना इंतजाम किया कि उसका नाम ग्यारहवीं कक्षा के लिए गया कॉलेज में लिखाया जा सका। एक बार फिर अनूप ने अच्छी पढ़ाई की और परीक्षा में शानदार प्रदर्शन करते हुए 81.8 प्रतिशत अंक हासिल किए। हालाँकि, उसने मीना को बताए बिना एक स्थानीय कोरियर कंपनी में काम भी कर लिया, ताकि उसकी माँ पर आर्थिक बोझ ज्यादा न पड़े। मीना को जब यह पता चला तो वे बहुत नाराज हुईं और उन्होंने उससे वह नौकरी छोड़ने को कहा। उन्होंने उसे इसके बजाय केवल पढ़ाई पर ध्यान देने को कहा।

अनेक होनहार छात्रों की तरह अनूप ने पटना में कई सारे कोचिंग संस्थानों में जाकर वहाँ की फीस पता की। साल में एक लाख से दो लाख रुपए तक की फीस दे पाना उसके लिए असंभव था। वह पटना की सड़कों पर नए-नए कोचिंग संस्थानों के बड़े-बड़े पोस्टर और पंफ्लैट देखता रहता था। कुछ ने आई.आई.टी. जे.ई.ई. परीक्षाओं में सफलता के बड़े-बड़े दावे किए थे, जबकि कुछ अन्य ने उच्च शिक्षित और योग्य शिक्षक होने का प्रचार किया था। कुछ ने सफल विद्यार्थों के फोटो और प्रमाण लगाए थे। अनूप को इन सबकी सत्यता परखना बहुत कठिन लगा। इसके अलावा, उसके पास पैसा भी तो नहीं था। वह अपनी माँ से सलाह करने चेव गाँव लौट आया। माँ ने उसे उम्मीद न छोड़ने का अनुरोध किया।

पटना में मीना ने अपने बेटे के साथ बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार से मिलने की भी कोशिश की, ताकि वह इंजीनियरिंग में कैरियर बनाने के लिए किसी कार्यक्रम में शामिल

होने में मदद मिल सके। जब वे मुख्यमंत्री के आवास पर पहुँचे तो एक सहृदय अधिकारी ने उन्हें बताया कि इस तरह का कोई कार्यक्रम सरकार नहीं चलाती और इसके बजाय उसने उन्हें सुपर 30 के बारे में बताया। उसने उन्हें सुपर 30 का फोन नंबर और पता भी बता दिया और आनंद कुमार से मिलने को कहा। "अगर वे तुम्हें सुपर 30 में ले लेते हैं तो तुम्हारी आर्थिक कठिनाइयाँ और बाकी समस्याएँ हल हो जाएँगी। वे कोचिंग, खाने और रहने का कोई पैसा नहीं लेते।"

इतने प्रसन्न करनेवाले बोल तो अनूप ने पिछले कई सालों से नहीं सुने थे और जब वह उस अधिकारी से मिलकर निकला तो पहली बार संतुष्ट महसूस कर रहा था।

जल्द ही उन्होंने आनंद कुमार से फोन पर बात की और माँ-बेटे ने उनसे मिलने का समय ले लिया।

"पटना में कब से आए हुए हैं आप लोग?" आनंद ने उनसे पूछा।

"चार दिन से, बाबू।" मीना ने जवाब दिया।

"ठहरे कहाँ पर हैं?"

"रुकने की कोई जगह नहीं है। पूरे दिन कोचिंग या मदद की तलाश करते रहते हैं और रात में थक-हारकर रेलवे प्लेटफॉर्म पर अखबार बिछाकर सो जाते हैं। सूखे चने और मुरमुरे खाकर नल से पानी पी लेते हैं।"

आनंद ने देखा कि वह महिला इस तेज गरमी में नंगे पैर थी, लेकिन उसके चेहरे पर किसी तरह की कड़वाहट या कुंठा नहीं दिख रही थी। आनंद उस महिला की आशा और संकल्प देखकर चकित थे। उसे सचमुच विश्वास था कि उसके बेटे में होनहार और सफल होने के उसमें सारे गुण हैं। *'इस दुनिया में कुछ बच्चों को पाँच सितारा स्कूलों में पढ़ने को मिलता है, लेकिन उनका मन फेसबुक और पार्टीबाजी में ज्यादा लगता है और इधर एक सच्चाई यह भी है।'* आनंद बहुत द्रवित हुए।

"ठीक है, सुपर 30 का टेस्ट आज से पाँच दिन बाद है। अगर तुम्हारे पास क्षमता है तो तुम उसमें पास हो जाओगे। इसमें हम छात्र की अभिरुचि का टेस्ट लेते हैं। प्रश्न मोटे तौर पर इंटरमीडिएट लेबल के, लेकिन अवधारणात्मक होते हैं।" आनंद ने अनूप और उसकी माँ को समझाया। मीना ने आनंद से अनुरोध किया कि वे अनूप को बिना टेस्ट के ही ले लें; लेकिन आनंद ने उनकी इस बात पर ध्यान नहीं दिया, क्योंकि वे नियम नहीं तोड़ना चाहते थे।

पाँच दिन बाद अनूप ने टेस्ट दिया, लेकिन बहुत कम अंकों से पास होने से रह गया। वह एकदम टूट गया। कुछ कारण ऐसा था कि आनंद के मन से भी अनूप की कहानी हट नहीं पा रही ती। उन्होंने उसकी पृष्ठभूमि, पिता के गायब होने, गरीबी, चेव में नक्सलवादियों के आतंक के साये में रहने और संघर्ष करने के बारे में और ज्यादा जानकारी ली। उन्हें यह भी पता चला कि इन संघर्षों में युवाओं ने लचीलापन दिखाया है। जिस करुणा के लिए आनंद

कुमार जाने जाते हैं, उसी को दिखाते हुए उन्होंने अनूप से कहा कि उन्हें लगता है कि उसके अंदर आई.आई.टी. जे.ई.ई. पास करने की क्षमता है, इसलिए उन्होंने इस प्रतिभाशाली लेकिन गरीब लड़के की मदद करने के लिए भाई प्रणव से विचार-विमर्श करके नियम थोड़ा शिथिल कर दिया। इस सब उदारता के पीछे एक अन्य कारण यह था कि वह परीक्षा के लिए तैयार था और बहुत ही कम अंकों से कट-ऑफ लाने में चूका था।

आनंद अन्य बच्चों के लिए तो नियम शिथिल नहीं करते थे, फिर इसके लिए ही ऐसा क्यों किया? इसका कारण यह था कि आनंद को लगा कि चेव जैसी जगहों के होनहार और लगनशील युवाओं के लिए मौके बहुत सीमित हैं। यह समझना कोई कठिन नहीं था कि अनूप जैसे लड़के आसानी से गाँव में फैले हिंसक जीवन के चंगुल में फँस सकते हैं। होशियार और महत्त्वाकांक्षी होने के कारण वह गिरोह का सरगना या नक्सलवादियों का कमांडर भी बन सकता था और फिरौती तथा हत्याओं के जरिए वसूली कर सकता था। ऐसा करनेवाला वह कोई पहला युवक नहीं होता। आनंद ने विचार किया कि कितने होनहार युवा इस जोखिम भरी राह पर चल निकले। और तब उन्होंने तय किया कि अगर अनूप की मदद की जाए तो वह इस राह पर नहीं जाएगा।

जैसा कि लग रहा था, चेव और आस-पास के इलाकों में फैली समस्या का संभावित हिस्सा होने की जगह अनूप चेव के बच्चों के लिए प्रेरणास्रोत बन गया था। उसने आई.आई.टी. जे.ई.ई. में अच्छी सफलता हासिल की और पढ़ाई के लिए भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, मुंबई चला गया।

मई 2010 में राष्ट्रीय राजनीतिक दलों ने एक दिन की देशव्यापी हड़ताल की तो पटना में भी राजनीतिक हलचल तेज हो गई। पटना में भी प्रदर्शनकारी अगर अपनी योजना के अनुसार आगे बढ़ते तो वहाँ जनजीवन ठप्प होने वाला था। अनूप समेत सुपर 30 की दाखिला परीक्षा की तैयारी किए हजारों विद्यार्थियों को चिंता हो गई थी, क्योंकि देशव्यापी हड़ताल उसी दिन थी, जिस दिन वह परीक्षा होनी थी। तय था कि उस दिन सड़कों पर वाहन नहीं चलने थे; लेकिन विद्यार्थी किसी तरह से पटना के बाँकीपुर गर्ल्स हाई स्कूल पहुँच गए। कुछ चक्का जाम पार करने में सफल हुए तो कुछ अन्य कई दिन पहले से ही परीक्षा केंद्र के लिए रवाना हो गए थे। इसके अलावा, पथराव का भी डर था। पुलिस ने शहर के अधिक हिंसक और संवेदनशील इलाकों में कानून व व्यवस्था बनाए रखने के लिए कर्फ्यू लगा दिया था।

सौभाग्य से, हड़ताल का आह्वान करनेवाले विभिन्न राजनीतिक दलों के नेताओं में सामान्य बुद्धि थी। जब उन्हें सुपर 30 की लोकप्रियता और उसकी परीक्षा के महत्त्व के बारे में पता चला तो उन्होंने छात्रों को आने-जाने का रास्ता देने का निश्चय किया, क्योंकि उन्हें समझ में आ गया था कि अगर छात्रों को परीक्षा देने से रोका गया तो निर्धन छात्रों का भविष्य खराब हो जाएगा।

इस प्रकार जहाँ पटना के बीचोबीच हड़ताल के कारण सुनसान था, वहीं बाँकीपुर गर्ल्स हाई स्कूल में लिखित परीक्षा देने के लिए सैकड़ों छात्र इकट्ठा थे। परीक्षा केंद्र पर कोई पुलिस नहीं थी। उस दिन अनूप और उनके साथियों की खुशी का ठिकाना नहीं रहा।

सुपर 30 में सामूहिक पढ़ाई के अनुभव ने अनूप का कायाकल्प कर दिया था और यह केवल उसी के साथ नहीं हुआ था। उसकी सफलता का मतलब चेव के कई और छात्र भी उच्च शिक्षा की ओर आकर्षित हो रहे हैं और कई अन्य अपनी समस्याओं के त्वरित समाधान के लिए हिंसा को 'न' कहने लगे हैं।

अनूप राज की कहानी आनंद कुमार और उनके साथी शिक्षकों के सान्निध्य में पढ़ने के लिए शांति कुटीर की यात्रा करनेवाले 390 गरीब लड़के-लड़कियों की कहानियों में से एक है। पिछले तेरह सालों में करीब 390 विद्यार्थियों में से 333 ने आई.आई.टी. जे.ई.ई. में सफलता हासिल की। यह कारनामा भारत में किसी अन्य कोचिंग संस्थान ने नहीं किया है और जब हर साल आनेवाले इन बेचैन लेकिन आशावान विद्यार्थियों की पृष्ठभूमि पर विचार करें तो उनकी यह सफलता वाकई चमत्कारी लगती है।

ऐसा ही प्रकाश दीप निधि झा थी। ऑटोरिक्शा चालक की बेटी निधि वाराणसी की थी। चार बेटियों और एक बेटे के पिता सुनील झा का एकमात्र सपना था कि उनकी संतानों को वैसी गरीबी न झेलनी पड़े, जो उन्होंने पूरी जिंदगी रिक्शा चलाते हुए झेली थी। हालाँकि, उनके पास निजी ट्यूशन का खर्च वहन करने लायक पैसा नहीं था।

निधि का सनातन धर्म इंटर कॉलेज में दाखिल कराया गया। शुरू से ही वह बेहद लगनशील छात्रा थी और पुरानी फटी-चिथी किताबों में घंटों उलझी रहती थी।

जब उसने दसवीं की परीक्षा पास की तो यह उसके लिए सोच से परे की चीज थी। इससे उसे इतना आत्मविश्वास मिला कि वह उस सपने को पूरा कर सके, जिसके लिए अनेक माता-पिताओं ने पास के मंदिर में पूजा की थी। वह अकसर उन्हें प्रार्थना करते सुना करती थी, "हे भगवान्! मेरे बेटे को डॉक्टर बना दो। इंजीनियर बना दो।" बिना किसी बाहरी मार्गदर्शन या औपचारिक कोचिंग के केवल पुरानी किताबें पढ़ते हुए उसने आई.आई.टी. प्रवेश परीक्षा की तैयारी शुरू की थी। हालाँकि, वह सफल नहीं हो पाई; वह परीक्षा पास नहीं कर सकी।

उसका सपना चूर-चूर हो गया। वह रोने लगी और अपने भाग्य को कोसने लगी। निराश होकर उसने सरकारी कॉलेज में बी.एस-सी. में दाखिला ले लिया। तभी एक दिन अखबार में उसने सुपर 30 के बारे में पढ़ा। निराश हो चुकी उसकी आँखों में फिर से आशा की लौ जगमगाने लगी। वह पटना पहुँची और प्रवेश परीक्षा पास करके सुपर 30 का हिस्सा बन गई। सुपर 30 में लड़कों की तुलना में लड़कियाँ बहुत कम थीं, इसलिए वह आनंद के परिवार का हिस्सा बन गई। जयंती देवी को वह 'दादी' कहने लगी और मन लगाकर मेहनत से पढ़ने लगी। अपने परिवार की स्थिति उसके दिमाग में घूमती रहती—ऑटोरिक्शा

चलाते पिता, नमकीन बेचते दादा, किसी की गाड़ी चलाते चाचा। इसके कारण उसकी पढ़ने की लगन बढ़ती गई। कई बार जयंती देवी उससे थोड़ा आराम करने, टी.वी. देखकर तनाव-मुक्त होने के लिए कहतीं; लेकिन वह जवाब देती, "दादी, इस सबके लिए तो पूरी जिंदगी पड़ी है, लेकिन यह मौका तो मुझे दोबारा नहीं मिलेगा न।"

रिजल्ट आया और निधि पास हो गई। इंजीनियरिंग की पढ़ाई के लिए वह भारतीय खनन स्कूल, धनबाद गई। फ्रांसीसी डायरेक्टर पास्कल पिकासो ने निधि के जीवन पर फिल्म बनाई। वह फिल्म वर्ष 2015 में रिलीज हुई और आनंद एवं प्रणव के साथ निधि का परिवार फिल्म का प्रीमियर देखने पेरिस गया था। वाराणसी में दरिद्रता का जीवन बितानेवाले निधि के परिवार के लिए यह बिल्कुल स्वप्निल क्षण था। अचानक उन्हें वह सब दिखाई दे रहा था, जिसकी उन्होंने अपनी बेटी के लिए कल्पना तक नहीं की थी।

जब आनंद और प्रणव ने पेरिस की सड़कों पर निधि की तसवीरोंवाले पोस्टर देखे तो दोनों भाई कृतज्ञता के भाव से भर गए। उनकी कामयाबी देखकर उनके दिलों में एक सुकून-सा भर गया।

सत्येंद्र प्रसाद सिंह और उनके परिवार की कहानी भी इतनी ही सम्मोहक है। वे एक छोटे-मोटे किसान हैं, जिनके पास एक भैंस थी, जिससे वे अपने परिवार का भरण-पोषण करते थे। आसपास के घरों और दुकानों में वे दूध बेचते थे। लेकिन इस काम में ज्यादा पैसा नहीं था। सत्येंद्र प्रसाद के पास उनकी भैंस के अलावा बस जमीन का एक छोटा सा टुकड़ा था। जानवर को चराना और उसकी जरूरतें पूरी करना बहुत मुश्किल और थकानेवाला काम था। गंगा की बाढ़ ने मानसून में उनकी जमीन बरबाद कर दी थी, इसलिए आजीविका की सारी आशाएँ केवल भैंस के दूध तक सीमित हो चुकी थीं। कहने की जरूरत नहीं कि सत्येंद्र प्रसाद नहीं चाहते थे कि उनके बेटे आलोक को भी यही सब झेलना पड़े। अपने व्यवसाय में बार-बार नाकाम होने से तंग आकर उन्होंने बदहाली से कुछ हद तक छुटकारा पाने के लिए अपनी जमीन बेच डालने का निश्चय किया। गाँववालों ने इसे आत्मघाती कदम माना। सत्येंद्र ने जमीन बेचने का मकसद अपने परिवारवालों और निकट मित्रों के अलावा किसी को नहीं बताया था। जमीन बेचने से मिले पैसे से उन्होंने आलोक का नाम एक अच्छे एक स्कूल में लिखवा दिया। वे जानते थे कि उनके गाँव में पढ़ाई-लिखाई की हालत उस सूखे चारे के समान ही है, जो वे अपने जानवर को खिलाया करते थे।

सत्येंद्र की योजना ने निराश नहीं किया। आलोक को स्कूल भेजने से सत्येंद्र प्रसाद की हालत भूखों मरने जैसी हो गई; लेकिन उन्हें उम्मीद थी कि हालत जरूर सुधरेगी।

स्कूल की पढ़ाई पूरी करने के बाद आलोक का चयन सुपर 30 में और फिर आई.आई.टी. में हो गया।

अब वह पावर ग्रिड में इंजीनियर हैं और जब छुट्टियों में अपने घर जाता है तो गाँव के बच्चे उसे घेर लेते हैं। गाँव के उस वीरान हो चुके स्कूल की हालत में अब कुछ सुधार हुआ है और

वहाँ बच्चों की हाजिरी बढ़ने लगी है। आने वाले समय में और भी सुधार की संभावना है। सत्येंद्र प्रसाद अब भी भैंसों का काम करते हैं; लेकिन अब उन्हें भविष्य की चिंता नहीं है, क्योंकि उनका बेटा कुछ बन गया है।

सुपर 30 से निकलनेवाले बच्चे अलग-अलग तरह से ऐसी ही कठिनाइयों और तकलीफों, आनंद और उल्लास से गुजरते हैं, जो कि किसी भी उच्च स्तरीय टीम के साथ होता है। वे साथ रहते हैं, साथ काम करते हैं, साथ हँसते-बोलते हैं, धींगा-मस्ती करते हैं, सामान सहेजते हैं, एक-दूसरे को अपनी बातें बताते हैं और एक टीम के सदस्य के रूप में डूबते या पार उतरते हैं।

स्वाभाविक रूप से जब आप एक टीम में हों तो एक महान् कोच होना अखरता नहीं। आनंद कुमार और उनका परिवार वर्षों से अनुकरणीय रोल मॉडल बना हुआ है। आनंद के परिवार से मिलनेवाली सद्भाव, शांति और सहानुभूति की भावना छात्रों के लिए मजबूत आधार है, जो उन पर भरोसा करके आते हैं। अधिकतर विद्यार्थी अपने कोच के गुण सीख लेते हैं, जो वे अपने दैनिक अनुभवों और अन्य तरीकों से ग्रहण करते हैं।

□

छात्र के मुख से

नाम : अभिषेक राज
सुपर 30 बैच : 2003 (सुपर 30 का प्रथम बैच)
संस्थान और विषय : भूभौतिकी, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, खड़गपुर
वर्तमान पद : क्षेत्र भू-भौतिकविद, श्लमबरगर, मॉस्को

मेरा जन्म बिहार के एक दूर-दराज के गाँव रसालपुर में हुआ था। मेरा परिवार बिहार का गरीब किसान परिवार था। मैंने स्कूली पढ़ाई और इंटरमीडिएट की परीक्षा बिहार शरीफ से पास की और उसके बाद मैं आई.आई.टी. जे.ई.ई. की तैयारी के लिए पटना आ गया। सुपर 30 में मेरा चयन परंपरागत रूप से नहीं हुआ था, क्योंकि सुपर 30 प्रवेश परीक्षा मे मेरा रैंक थोड़ा कम रह गया था। मेरे पास आई.आई.टी. जे.ई.ई. की तैयारी के लिए टेस्ट प्रोग्राम करने लायक पैसा था नहीं, इसलिए मैंने आनंद सर से अपनी टेस्ट सीरीज में मौका देने को कहा। सौभाग्य से, मैंने पहले ही टेस्ट में अच्छा किया और आनंद सर ने मुझे टीम में शामिल होने के लिए कह दिया।

यह एकदम अलग तरह का अनुभव था, जब हम सब एक टीम के रूप में साथ में पढ़ते थे। आनंद सर हमें भोजन, निवास और कक्षाओं समेत सबकुछ उपलब्ध कराकर हमारे कॉन्सेप्ट सुधारते थे। मुझे पढ़ानेवाले अधिकतर अध्यापक कॉन्सेप्ट-ओरिएंटेड ही थे; हालाँकि आनंद सर समस्या का समाधान करनेवाला रवैया रखते हैं। वे एक टॉपिक के तहत अधिकतर समस्याओं के आधार पर कॉन्सेप्ट को परिभाषित या विकसित किया करते थे, जो कि उनकी अनोखी विशेषता थी। हर सप्ताह वे हमसे उस टॉपिक या अलग अध्याय के बारे में पूछा करते थे, जो हमें कठिन लगता था या जिसमें हम सबसे कमजोर हुआ करते थे और तब वे उन्हें खासतौर पर समझाने के लिए कक्षाएँ लगाया करते थे। आनंद सर ने जे.ई.ई. में सफलता के लिए अनूठा प्रतिस्पर्धात्मक माहौल तैयार कर दिया, जिसका एक ही मकसद होता था—जे.ई.ई. में सफलता, जीवन में सफलता। उन्होंने जो मुझे और मेरे जैसे सैकड़ों छात्रों को मौका दिया, उसके लिए मैं उन्हें धन्यवाद देता हूँ। मैं मानता हूँ कि इस तरह का संस्थान बनाकर वे लाखों छात्र-छात्राओं को हर दिन प्रेरित करते हैं।

7

सुनहरा कल

वर्ष 2003 के अप्रत्याशित परिणामों के बाद आनंद प्रोत्साहन और नए उत्साह से लबरेज होकर सुपर 30 के नए बैच के चयन की तैयारी में जुट गए। हालाँकि अच्छे प्रचार और प्रशंसा के बीच एक बढ़ती हुई समस्या फिर से उभर आई। पटना का कोचिंग उद्योग जितना बड़ा है, उतना ही कुख्यात भी और उसके बीच जहरीली ईर्ष्या भी पनप रही है। कारण बहुत सरल, लेकिन अपने आप में पूरा नहीं था। नए लोगों में आनंद कुमार भारत के सबसे योग्य गणित शिक्षक के रूप में बहुत तेजी से उभर रहे थे। ऐसे में इस विषय के महत्त्वाकांक्षी छात्रों की वे स्वाभाविक रूप से पहली पसंद बन गए थे। आनंद इस तरह के नकारात्मक प्रचार से अपरिचित नहीं थे और उन्होंने इसका जवाब और अधिक प्रतिबद्धता के साथ पढ़ाई के जरिए दिया।

हालात तब और बिगड़ गए, जब कुछ अपराधी भी मैदान में आ गए, खासकर एक कुख्यात गैंगस्टर, जो स्थानीय हाई सिक्योरिटी जेल में आजीवन कारावास की सजा काट रहा था। वह हर तरह के कारनामों के लिए कुख्यात था। बिहार के हर तरह के अपराधी उस बदमाश से टकराने से बचते थे। कहा जाता था कि वह जेल में रहते हुए भी लंबी पहुँच रखता था। वसूली उसके लिए बहुत आसान काम था।

एक दिन वर्ष 2003 में आनंद और प्रणव अपने यहाँ आए चचेरे भाई विवेक सिंह से बात कर रहे थे, तभी लैंडलाइन फोन की घंटी बजी। विवेक ने फोन उठाया।

''हैलो!''

''मास्टर को फोन दो। उससे बोलो, उसका सबसे भयानक सपना उसे बुला रहा है।''

''कौन बोल रहा है?''

''तू मुझे नहीं जानता?'' गैंगस्टर ने अपना नाम बताते हुए कहा, ''अब फोन मास्टर को दे।''

आनंद को चिंता होने लगी। यह आदमी क्यों फोन कर रहा है? प्रणव ने विवेक के हाथ से रिसीवर लिया और बोला, ''हाँ, क्या चाहिए?'' तब तक फोन कट चुका था।

थोड़ी देर में फोन दोबारा बजा। इस बार आनंद ने ही उठाया। गैंगस्टर ने आनंद को धमकाना और गाली देना शुरू कर दिया।

‘‘मैं जानता हूँ, तुम कौन हो। तुम वही हो न, जो सुपर 30 का टेस्ट पास नहीं कर पाए थे, है न? तुम किसी और के नाम से मुझे क्यों धमका रहे हो? तुम्हें शर्म आनी चाहिए। मैं पुलिस को रिपोर्ट कर दूँगा।’’ आनंद ने कहकर फोन पटक दिया।
तभी फोन दोबारा बज उठा।
‘‘अबे ओ मास्टर, तू मुझे नहीं पहचानता? मैं तेरी जिंदगी बरबाद कर दूँगा।’’
आनंद ने उसे झिड़कने की कोशिश की, लेकिन प्रणव ने उनसे फोन ले लिया। गैंगस्टर गालियों की बौछार किए जा रहा था, ‘‘इस आनंद कुमार से कहो कि सुपर 30 बंद कर दे। उससे बोल देना, अगर उसने कोचिंग बंद नहीं की तो मैं उसकी जान ले लूँगा। कोचिंग करनी है तो मेरे पास भी कुछ पैसा पहुँचाना पड़ेगा। हाँ, ये महात्मा बनने की कोशिश न करे।’’
अब यह स्पष्ट था कि फोन करनेवाला वह गैंगस्टर ही था।
आनंद परेशान हो उठे।
प्रणव उनके भाव समझ गया। उन्हें परेशान देखकर उसने उन्हें हिम्मत बँधाई।
‘‘भैया, चिंता मत करिए। देखते हैं, क्या होता है। चलिए, पुलिस से शिकायत करते हैं। ऐसी धमकियों से हम डरेंगे नहीं।’’
कुछ वर्षों बाद, जब आई.जी. पुलिस का तबादला पटना से दिल्ली हो रहा था, तब उन्होंने आनंद को बताया था कि वह गैंगस्टर उन्हें धमकी इसलिए दे रहा था, क्योंकि आनंद की तरक्की से परेशान न सिर्फ कुछ कोचिंग संचालक थे बल्कि कुछ ब्यूरोक्रेट्स उनकी प्रसिद्धि से जलने लगे थे।

यह डर तब और बढ़ गया, जब वर्ष 2003 में आनंद के घर के बाहर ही उन पर हमले का प्रयास किया गया। उनका एक कर्मचारी मुन्ना हमलावर के रास्ते में आ गया था। मुन्ना के पेट में छुरे से कई वार किए गए, लेकिन वह हमलावर को घर में घुसने से रोकने में सफल रहा था। मुन्ना के चिल्लाने की आवाज सुनकर कक्षा में पढ़ रहे बच्चे तुरंत उसे बचाने के लिए दौड़े।
सुपर 30 के लोग और आसपास के पचास से ज्यादा लोग मुन्ना को स्थानीय अस्पताल लेकर गए। रास्ते भर उसका खून बहता रहा। जब उसका इलाज कर रहे डॉक्टरों ने आनंद को बताया कि मुन्ना की जान बचाने के लिए खून चढ़ाने की जरूरत पड़ेगी तो तुरंत कई छात्र तैयार हो गए और रक्तदान के लिए आगे आ गए।

जब तक मुन्ना की हालत खतरे से बाहर नहीं हो गई, तब तक वे लड़के वहाँ से हटे नहीं। मुन्ना भी मानता है कि लड़कों की प्रार्थना और आनंद कुमार की सद्भावना से ही उसकी जान बच पाई थी। मुन्ना के पेट पर छुरे के निशान अब भी आनंद को खतरे की याद रोजाना दिलाते हैं।

आनंद कुमार को इसके बाद बिहार पुलिस के दो हथियारबंद जवानों की सुरक्षा लगातार मुहैया कराई गई। यह फैसला तत्कालीन डी.जी.पी. बिहार ने लिया था। आनंद कुमार को कुछ हो जाता तो बिहार की कानून और व्यवस्था की स्थिति पर गंभीर सवाल उठते। हालाँकि आनंद की सुरक्षा जल्द हटा ली गई। इसके बाद वर्ष 2005 में जब नीतीश कुमार की सरकार सत्ता में आई तो उनकी सुरक्षा स्थायी कर दी गई और इसी के साथ उन्हें मिलनेवाली धमकियाँ भी बंद हो गईं।

अगले साल वर्ष 2004 में आई.आई.टी. जे.ई.ई. पास करनेवाले विद्यार्थियों की संख्या 18 से बढ़कर 22 हो गई। 2005 में ये संख्या 28 हो गई। 2006 और 2007 में 28-28 विद्यार्थी इस बेहद प्रतिस्पर्धात्मक टेस्ट में पास हुए। लोग हर तरफ इसी की चर्चा करने लगे। हर कोई जानना चाहता है कि आनंद कुमार के पास कौन सा ऐसा फॉर्मूला है, जिससे वे यह जादू कर दिखाते हैं। हालाँकि यह तो आनंद ही जानते थे कि यह कैसे हो रहा है। तुरंत और आसान शॉर्टकट से सफलता पानेवाले लोगों को प्रभावित करने के लिए यह बहुत बड़ी बात थी। इन लोगों को तब बड़ा सदमा लगा, जब आनंद ने बताया कि सफलता का कारण और कुछ नहीं, छात्रों का उनमें विश्वास और उनकी दिन-रात की कड़ी मेहनत ही है, जिसके जरिए वे साबित करना चाहते हैं कि उनकी परिस्थितियाँ उन्हें रोक नहीं सकतीं।

इन वर्षों में जापान का भी ध्यान सुपर 30 की ओर गया और वर्ष 2005 में ही जापानी चैनल एन.एच.के. ने उनके स्कूल पर पहली डॉक्युमेंटरी फिल्म बनाई थी। इसके बाद वर्ष 2007 में जापानी अभिनेत्री और पूर्व मिस जापान नोरिका फुजीवारा भी सुपर 30 पर एक और डॉक्युमेंटरी फिल्म बनाने आईं। आनंद कुमार के पटना में किए जा रहे इस प्रयास से बेहद प्रभावित मिस फुजीवारा के आने के बाद से ही भारतीय मीडिया को पता चला कि सुपर 30 ने कितनी बड़ी सनसनी पैदा कर दी है।

वर्ष 2015 में दो विद्यार्थियों का चयन टोक्यो यूनिवर्सिटी ने फुल स्कॉलरशिप के साथ उच्च शिक्षा के लिए किया। इतने वर्षों में सुपर 30 पर जापान में कई डॉक्युमेंटरी बन चुकी थीं और जापान के प्रसिद्ध प्रकाशक भूषण ने इस पर एक किताब 'इंडो नो शोउगेकी' भी छापी, जिसे टी.वी. चैनल एन.एच.के. के पत्रकारों ने लिखा था। जापान ने इस गणितज्ञ के विजन की सराहना की और सुपर 30 के प्रसिद्ध होने से पहले ही उसके उद्देश्य का समर्थन किया था।

इसके बाद संपूर्णता का वर्ष आया। अब तक भारतीय मीडिया को आनंद कुमार के बारे में अच्छी तरह से पता चल चुका था। उसे पता चल चुका था कि इस व्यक्ति ने हर साल कुछ असाधारण उपलब्धि हासिल की है और वे अकसर उसे फोन करने लगे, संपर्क में रहने लगे और जहाँ भी जाते, उसकी खबर रखने लगे। वर्ष 2008 में पहली बार सुपर 30 के सभी 30 विद्यार्थी आई.आई.टी. जे.ई.ई. में सिलेक्ट हुए। यह बात विश्वास के परे थी, लेकिन 2009 में भी सुपर 30 ने फिर से शत-प्रतिशत रिजल्ट दिया। इसी साल डिस्कवरी

चैनल ने सुपर 30 पर डॉक्युमेंटरी बनाई, जिसका निर्माण वेरोनिका हॉल ने और निर्देशन क्रिस्टोफर मिशेल ने किया था। वर्ष 2010 में शत-प्रतिशत रिजल्ट लाकर सुपर 30 ने हैट्रिक कर दिखाई। लगातार तीसरे साल सुपर 30 के सभी बच्चे आई.आई.टी. जे.ई.ई. पास कर रहे थे।

वर्ष 2010 में बराक ओबामा के विशेष दूत रशद हुसैन सुपर 30 आए और उसे उन्होंने देश के सर्वश्रेष्ठ संस्थान की संज्ञा दी।

''सुपर 30 भारत का सबसे अच्छा संस्थान और परिवर्तन का उदाहरण है। राष्ट्रपति बराक ओबामा शिक्षा के क्षेत्र में जाति-नस्ल से परे ऐसा ही सपना देखते हैं।'' अमेरिकी राष्ट्रपति के ऑर्गेनाइजेशन ऑफ द इस्लामिक कॉन्फ्रेंस के विशेष दूत ने कहा था।

इसके बाद तो प्रशंसा और पहचान लगातार मिलती गई। जैसे-जैसे लोगों को आनंद कुमार की कोशिशों और सफलता के बारे में पता चलता गया, मीडिया की खबरों और विशेष जिक्र के जरिए उन्हें मिलनेवाला प्रोत्साहन बढ़ता गया। *'टाइम'* पत्रिका ने वर्ष 2010 में सुपर 30 को एशिया का सर्वश्रेष्ठ स्कूल बताया था। *'न्यूजवीक'* ने दुनिया के चार इनोवेटिव स्कूलों में शुमार किया। इसके बाद फ्रांसीसी डायरेक्टर पास्कल पिकासो ने *'द बिग डे'* नाम से फिल्म बनाई, जिसमें 2014 में जे.ई.ई. (एडवांस्ड) परीक्षा पास करनेवाली और अभी आई.एस.एम. धनबाद में पढ़ रही निधि झा की कहानी शामिल की। देश में ही मशहूर फिल्म निर्माता-निर्देशक प्रकाश झा जब 'आरक्षण' (2011) फिल्म बना रहे थे तो उन्होंने आनंद कुमार से परामर्श किया था। यह फिल्म शिक्षा और व्यवस्था में मौजूद जातिगत आरक्षण पर आधारित थी, जिसमें अमिताभ बच्चन, सैफ अली खान और दीपिका पादुकोण ने काम किया था। बच्चन ने प्रभाकर आनंद नाम के ऐसे प्रिंसिपल का किरदार निभाया था, जो कहानी के एक अन्य पहलू में अलग तरीके से वंचित तबके के बच्चों को गणित पढ़ाता था। अमिताभ बच्चन ने स्वीकार किया था कि उनके किरदार का यह हिस्सा आनंद कुमार पर आधारित था। ''मुझे बिग बी और सैफ के किरदारों को वंचित तबके के बच्चों को गणित पढ़ाते हुए निर्देशित करना था। मुझे पता नहीं था कि यह कैसे किया जाए। इसलिए, मैंने आनंदजी से अनुरोध किया कि कुछ समय निकालें और वे इसके लिए आसानी से तैयार हो गए।'' प्रकाश झा ने बताया।

''उनकी अनोखी शैली ने हमारा काम आसान कर दिया। उन्होंने जो सहायता की, उसके लिए मैं उनका आभारी हूँ।'' झा कहते हैं। आनंद कक्षा की रिकॉर्डिंग लेकर प्रकाश झा के ऑफिस गए, जिसे अमिताभ बच्चन और सैफ अली खान को अपने किरदार अच्छी तरह से समझने में मदद मिली। इस सबसे पता चलता है कि आनंद कुमार किस तरह से अनुकरणीय शिक्षक और रोल मॉडल हैं, जो न केवल अपने छात्रों से जुड़ जाते हैं, बल्कि उनके मार्गदर्शक के रूप में भी काम करते हैं।

बहुत छोटे स्तर से शुरुआत करनेवाले किसी भी व्यक्ति के लिए यह सारा घटनाक्रम एकदम असाधारण लगता है। लेकिन इस बढ़ती ख्याति में कई काँटे भी थे।

वर्ष 2010 में असम के तत्कालीन मुख्यमंत्री तरुण गोगोई ने भी सुपर 30 की यात्रा की और बेहद प्रभावित हुए। मजे की बात यह कि उनकी यात्रा के बाद उनके पास आर्थिक मदद के लिए सुपर 30 के नाम से एक फोन आया। दुर्भाग्य से मुख्यमंत्री के कार्यालय ने आनंद कुमार से बात करके यह पता करने की कोशिश नहीं की कि यह फोन सही था या किसी ठग की करामात थी। और इस तरह से वह ठग सुपर 30 में दाखिला लेने के बहाने मुख्यमंत्री से एक बड़ी रकम खींचने में सफल हो गया। यह कोई पहला मौका नहीं था, जब सुपर 30 के सरोकार से सहानुभूति रखनेवालों से पैसा ठगने की कोशिश की गई थी। आनंद ने बार-बार यह स्पष्ट करने की कोशिश की कि ऐसे किसी भी अनुरोध की जाँच की जानी चाहिए; क्योंकि सुपर 30 किसी भी तरह का चंदा नहीं लेता।

कहते हैं कि अनुकरण ही प्रशंसा का सबसे बड़ा रूप है। अगर ज्यादा-से-ज्यादा आनंद कुमार हों और वे भी सुपर 30 की तरह वही करें, जो सालों से ये करता आ रहा है तो यह बहुत अच्छा होगा। हालाँकि, अभी तक ऐसा देखने को नहीं मिला है और बिहार में कोई और ऐसा संस्थान नहीं खुला है, जो बगैर चंदा लिये इस तरह से मुफ्त शिक्षा, रहन-सहन और भोजन उपलब्ध कराता हो। दुर्भाग्य से, कोचिंग व्यवसाय जैसे आकर्षक उद्योग में शातिर चालें चलकर सीधे-सादे छात्रों और अभिभावकों को ठगना बहुत आसान है। सुपर 30 की प्रसिद्धि बढ़ने के साथ ही उसकी लोकप्रियता को भुनाने के लिए पटना और आसपास के इलाकों में अनेक कोचिंग संस्थान खुल गए। आसपास सुपर 50, सुपर 100 और सुपर 20 नाम से अनेक संस्थान और उनके परचे दिखने लगे। ये लोगों को गुमराह करके यह समझाने की कोशिश करने लगे कि वे सुपर 30 की ही शाखाएँ और उसका विस्तार हैं। कुछ ने अधिक बेहतर ट्यूशन देने की शेखी बघारी, लेकिन मुफ्त इन-हाउस ट्रेनिंग देने की बात किसी ने नहीं की। किसी का स्तर भी आनंद कुमार द्वारा स्थापित स्तर के समान नहीं था। परिणामस्वरूप उनमें से कोई भी ज्यादा दिन नहीं टिक पाया और अब उनका नामोनिशान तक नहीं बचा।

अपने वेबपेज पर आनंद कुमार ने एकदम स्पष्ट घोषणा कर रखी है कि पटना में केवल एक सुपर 30 है, जो वे शांति कुटीर में चलाते हैं। उसी पेज पर यह भी स्पष्ट किया गया है कि सुपर 30 संस्थान के प्रबंधन के लिए किसी भी उपक्रम से कोई अनुदान नहीं लेता।

एक बात और आनंद कुमार को दुखी करती है, जब लोग यह सोचते हैं कि सुपर 30 में छात्रों का चयन जाति के आधार पर होता है और आरक्षित कोटे के छात्र-छात्राओं को दाखिला आसानी मिल जाता है। यह सत्य नहीं है और छात्र-छात्राओं के चयन का एकमात्र आधार उनका आर्थिक पिछड़ापन होता है।

आनंद को लगभग हर सप्ताह विश्वविद्यालय, कॉरपोरेट, सरकारी संस्थान चर्चा या व्याख्यान के लिए बुलाते हैं। उनके अध्यापन पर इनका कोई असर न पड़े, इसका ध्यान रखते हुए वे इन व्याख्यानों के लिए अकसर जाने की कोशिश करते हैं। वे समझते हैं कि वे सुपर 30 की पहचान हैं और देश से भेदभाव, गरीबी जैसी अनेक समस्याओं को मिटाने के लिए बिहार जैसे बेरोजगारी और अभाव से ग्रस्त राज्यों में शिक्षा ही लोगों को जागरूक करने का महत्त्वपूर्ण साधन है।

शुरुआती दिनों में भी जब आनंद गरीब बच्चों को अपनी पीठ पर भारी बस्ता लादे पैदल चलते देखते थे तो वे उनमें तथा ए.सी. बसों में चलनेवाले अन्य समृद्ध बच्चों में अंतर साफ देखते थे। वे देखते हैं कि विभिन्न सामाजिक स्तरों के इन बच्चों के बीच के ये अंतर लगातार बढ़ते जा रहे हैं और भविष्य में इनके खत्म होने के भी आसार नहीं हैं, जिससे देश में आर्थिक विषमता बढ़ती जा रही है। इसका एक स्पष्ट समाधान तो शिक्षा के जरिए सबको समान अवसर उपलब्ध कराने का है। वर्ष 2010 में शिक्षा का अधिकार लागू हुआ, जिससे भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 ए के तहत छह से चौदह वर्ष की उम्र के सभी बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार दिया गया है। आदर्श रूप में इस अधिनियम को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि सभी बच्चों को शुरुआती दिनों में पर्याप्त शिक्षा मिले, जिससे वे उच्च शिक्षा के लिए तैयार हो सकें। मिड डे मील जैसी अनेक आकर्षक योजनाएँ भी बच्चों की हाजिरी सुनिश्चित करने के लिए लागू की गईं। वार्षिक शिक्षा स्तर रिपोर्ट ए.एस.ई.आर. (2014) में बच्चों के स्कूल में दाखिला होने की दर 96.7 प्रतिशत है, जो कि वैश्विक दर के निकट है।

हालाँकि, चिंता की वजह ग्रामीण भारत में शिक्षा की गुणवत्ता और प्राथमिक स्कूलों की दशा है। वर्ष 2015 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने निर्देश दिया था कि सरकारी अधिकारियों के बच्चे सरकारी स्कूलों में ही दाखिल कराए जाएँ, ताकि उन स्कूलों की स्थिति से वे अवगत हो सकें और उनमें सुधार सुनिश्चित कर सकें।

अदालत ने माना था कि देश के स्कूल जानेवाले 90 प्रतिशत बच्चों को सँभालनेवाले सरकारी स्कूलों की हालत खराब है, लेकिन संबंधित अधिकारियों को उनकी परवाह नहीं है।

ए.एस.ई.आर. के अनुसार, 96.7 प्रतिशत बच्चों के स्कूल में दाखिल होने के बावजूद पाँचवीं कक्षा के हर दो में से एक से भी कम बच्चे दूसरी कक्षा की किताब पढ़ पाते हैं, जो कि वर्ष 2013 में 47 प्रतिशत से थोड़ा ही ज्यादा था। बुनियादी अंकगणितीय कौशल तो (वर्ष 2013 में 46 प्रतिशत तक) वास्तव में गिरा है—आठवीं कक्षा के केवल 44.1 प्रतिशत बच्चे ही भाग के सवाल हल कर पाते हैं, जो कि छोटी कक्षाओं के पाठ्यक्रम का बुनियादी हिस्सा होते हैं।

यह कोई नई बात नहीं है कि किसी संगठन की सफलता या असफलता उस संगठन में शामिल लोगों से जुड़ी होती है और सुपर 30 भी इसका अपवाद नहीं है। पहले ही दिन से सभी स्तर के कर्मचारियों में एक समान बुनियादी गुण रहे, जिनका कार्यक्रम की सफलता में योगदान है, जिनमें से संगठन के लिए पूरा समर्पण, समय की पाबंदी, मानदारी और काम के घंटों का पर्याप्त लचीलापन शामिल है।

जहाँ तक परिणामों की बात है तो सुपर 30 की टीम निश्चित ही पूरे भारत की और संभवतः दुनिया भर की सबसे सफल व शैक्षणिक इकाइयों में से एक है। असफलता की दर कम है और सफलता की दर ज्यादा है।

सुपर 30 में आनेवाले छात्र-छात्राओं को वह हासिल होता है, जो वे चाहते हैं और इसमें उनकी कड़ी मेहनत तथा लगन तो शामिल है ही, साथ ही उनकी सफलता का बड़ा हिस्सा आनंद कुमार, प्रणव कुमार एवं जयंती देवी की टीम और उनके परिवार को भी जाता है। यह सब इसलिए, क्योंकि अपने छात्र-छात्राओं के प्रति उनकी प्रतिबद्धता अद्वितीय है। छात्र-छात्राएँ जिस दिन से सुपर 30 में आ जाते हैं, उसी दिन से वे इस परिवार की प्राथमिकता में आ जाते हैं। अपने अध्यापकों और गुरुओं का समर्पण और ऊर्जा उन्हें हर रोज मिलता है और यह समर्पण कार्यक्रम छोड़ देने के बाद भी जारी रहता है। उनमें से एक भी छात्र-छात्रा को वे नहीं भूलते और यहाँ तक कि जो आई.आई.टी. जे.ई.ई. पास नहीं कर पाते, वे भी उनसे सलाह और सहयोग हमेशा लेते रहते हैं।

जो आई.आई.टी. जे.ई.ई. पास कर जाते हैं, उनके लिए भी सुपर 30 का सहयोग समाप्त नहीं होता। सुपर 30 में लिए जानेवाले सभी विद्यार्थी आर्थिक रूप से बदहाली वाले होते हैं। इस कारण उन्हें सफल होने के बाद आई.आई.टी. की चार साल की उच्च शिक्षा में ट्यूशन, रहने-खाने और अन्य खर्चों में तंगी रहने की पूरी आशंका रहती ही है। आनंद कुमार आई.आई.टी. जे.ई.ई. पास करनेवाले इन छात्र-छात्राओं की आर्थिक जरूरतों से पूरी तरह से अवगत रहते हैं, इसलिए वे अपने संपर्कों को लगातार बढ़ाते जाते हैं, ताकि इन जरूरतमंद छात्र-छात्राओं की मदद की जा सके।

आरंभिक वर्षों में उन छात्र-छात्राओं को अपनी आर्थिक बदहाली के कारण बैंकों से ऋण लेने में बहुत दिक्कतें आती थीं। आई.आई.टी. की फीस दे पाना, खासकर हाल की बढ़ोतरी के बाद, इन परिवारों के लिए बहुत मुश्किल होता है, जो दो जून की रोटी तक न जुटा पाते हों। और अगर बैंक ऋण देने के लिए तैयार भी हो जाएँ, तब भी हर सफल अभ्यर्थी को कक्षाएँ शुरू होने से पहले काउंसलिंग के समय 40,000 रुपए जमा करने होते हैं। ट्यूशन फीस के लिए तो ऋण उपलब्ध हो भी जाता है, लेकिन आरंभिक काउंसलिंग फीस के लिए नहीं, क्योंकि तब तक अभ्यर्थी का दाखिला नहीं हुआ होता है। अतीत में पढ़ाई का खर्चा न उठा सकनेवाले छात्र-छात्राओं को सूदखोरों से मदद लेनी पड़ती थी, जो जरूरतमंद छात्र-छात्राओं से बहुत ज्यादा ब्याज वसूलने में लगे रहते थे।

आनंद ने सुपर 30 के सफल अभ्यर्थियों को मुसीबत में फँसे देखा और अगर उन्हें अपनी पढ़ाई जारी रखनी है तो उन्हें इन्हीं बेशर्म सूदखोरों का भारी ऋण झेलना पड़ता है। कुछ तो करने की जरूरत थी और इसीलिए जल्द ही सुपर 30 ने आई.आई.टी. जे.ई.ई. पास कर लेनेवाले छात्र-छात्राओं की मदद के लिए रास्ते तलाशने शुरू कर दिए।

आनंद कुमार के सबसे पुराने छात्र मनीष प्रताप सिंह प्रणव के बहुत गहरे मित्र भी हैं। वे झारखंड में राँची की यूनियन बैंक ऑफ इंडिया के ब्रांच मैनेजर भी हैं। आई.आई.टी. की चार साल की पढ़ाई पूरी करने में इन गरीब छात्र-छात्राओं को जो मुश्किलें पेश आती हैं, उनसे वे अच्छी तरह से परिचित थे। उन्होंने सुझाव दिया कि आनंद को इन बैंकों से संपर्क करके उनसे संबंध स्थापित करने चाहिए, ताकि वे सुपर 30 के छात्र-छात्राओं को ऋण देने में, खासकर काउंसलिंग के लिए, कुछ उदारता बरतें। जब कोई अभ्यर्थी शिक्षा ऋण के लिए बैंक जाता तो बैंकवाले उसे दाखिले का सबूत माँगते थे। हालाँकि वे छात्र तो काउंसलिंग के लिए ऋण चाह रहे होते हैं, जो कि संस्थान में दाखिले से पहले चाहिए होता है। और यह स्थिति बैंकवालों को समझना बहुत मुश्किल होता था।

मार्च 2015 में आनंद केंद्रीय वित्त राज्यमंत्री जयंत सिन्हा से भी मिले थे और उनसे अनुरोध किया था कि बैंक ऋण में काउंसलिंग की फीस को भी शामिल किया जाए और मंत्री भी ऐसे अभ्यार्थियों को अधिक उदार बैंक ऋण देने के विचार के प्रति काफी तत्पर दिखे।

वर्ष 2015 में दो भाइयों राजू और बृजेश की कहानियाँ मीडिया में आईं, जो आई.आई.टी. में सिलेक्ट हो जाने के बाद भी काउंसलिंग फीस वहन नहीं कर पाए थे। अखिलेश यादव, स्मृति ईरानी और राहुल गांधी जैसे राजनेताओं ने उनकी परेशानियों को समझा और उनकी फीस माफ कर दी गई थी। आनंद कुमार और उनके सुपर 30 की विश्वसनीयता को ध्यान में रखते हुए अब आई.डी.बी.आई. बैंक काउंसलिंग फीस के लिए ऋण देता है और इस तरह से एक बड़ी वित्तीय बाधा दूर हो चुकी है।

पैसा इन छात्र-छात्राओं के लिए तो बहुत महत्त्वपूर्ण था, लेकिन स्वयं आनंद के लिए इसकी ज्यादा अहमियत नहीं है। उन्हें अपने को धनी बनाने के लिए अनेक मौके आए। इस परियोजना को सफल बनाने के इच्छुक अनेक शुभचिंतकों ने उन्हें सहारा देने या विस्तार के अवसर पैदा करने के लिए बड़ी-बड़ी धनराशि देने का प्रस्ताव किया। कहने की जरूरत नहीं कि सुपर 30 ब्रांड की पहली साल की सफलता के बाद से ही इस ब्रांड से फायदा उठाने के इच्छुक अनेक अवसरवादी इर्द-गिर्द मँडराने लगे थे। सुपर 30 और इसके छात्र-छात्राओं की सफलता या असफलता में धन को प्रेरक या निर्धारक कारक बनाने के लिए आनंद अनिच्छुक रहे और इसकी सराहना उनके मित्र भी करते हैं। रामानुजन स्कूल में आनंद के छात्र रहे रजनीश कुमार ने हालाँकि अलग राह चुनी और अर्थशास्त्र तथा कानून की पढ़ाई करके वे मुंबई स्थित एगन ऐलिगेयर लाइफ इंश्योरेंस कंपनी में लीगल मैनेजर बन

गए, लेकिन वे अपने मित्रों के कार्यों से वर्षों से जुड़े हैं और उन्हें सराहते हैं। जरूरत पड़ने पर वे आनंद और सुपर 30 को कानूनी सलाह भी देते हैं।

यह कहना सही होगा कि रजनीश ने काफी सफलता हासिल कर ली है, लेकिन वे अब भी अपने गुरु की ताकतवर पैसे के आगे न झुकने के विचार को सराहते हैं।

''इतने वर्षों में वे बिल्कुल भी नहीं बदले हैं।'' अपने छात्र-छात्राओं के साथ बैठे कुछ खा रहे आनंद की ओर इशारा करते हुए रजनीश कहते हैं, ''वहीं रहते हैं और दिन में अधिकतर समय दैनिक गतिविधियों में लगे रहते हैं।''

आनंद आज भी बहुत साधारण हैं। रजनीश इस बात को मानते हैं कि उनके हिसाब से आनंद का मकसद पैसा कमाना कभी नहीं रहा और इस मामले में उनकी ईमानदारी हर संदेह से परे हैं।

उन्होंने जो नाम और प्रसिद्धि अर्जित की है, उससे लाखों-करोड़ों रुपए कमाए जा सकते हैं; लेकिन उन्होंने सच्चा शिक्षक रहना पसंद किया। सौभाग्य से वे सर्वश्रेष्ठ हैं।

यह कोई राज की बात नहीं कि आनंद इस पूरी सफलता का श्रेय लगन और इच्छा को देते हैं। वे चाहे अपने छात्र-छात्राओं से बात कर रहे हों या सरकार के मंत्रियों से या बिजनेस लीडरों से, वे बार-बार अपना यही विश्वास दोहराते हैं कि बाधाओं को पार करने की इच्छा ही सफलता का मुख्य कारण है और बड़ी-से-बड़ी और असंभव लगने वाली बाधाओं और अंततः सफलता या असफलता के बीच सेतु का काम अकसर यही लगन करती है।

आपकी इच्छा-शक्ति ही आपको सफलता की ओर ले जाती है, यह आनंद कुमार की पसंदीदा पंक्ति है, जो वे टोक्यो यूनिवर्सिटी, ब्रिटिश कोलंबिया यूनिवर्सिटी, एम.आई.टी., हार्वर्ड, स्टेनफोर्ड, आई.आई.एम., कॉरपोरेट और यहाँ तक कि गाँवों-मुहल्लों जैसी छोटी जगहों पर भी बोलते हैं।

आनंद से नेकनीयत अभिभावक और अन्य लोग अकसर पूछते हैं कि प्रतियोगी परीक्षाएँ पास करने के लिए कोचिंग क्यों इतनी जरूरी हो गई हैं। क्या बच्चे अपने आप तैयारी नहीं कर सकते? हायर सेकंडरी शिक्षा का क्या मतलब है, अगर उसमें आई.आई.टी. जे.ई.ई. जैसी प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी नहीं कराई जाती?

ये प्रश्न अकसर उनके सामने रखे जाते हैं। सुबह स्कूल जाना और फिर उन्हीं विषयों की पढ़ाई के लिए ट्यूशन जाने का मतलब है कि हमारी शिक्षा प्रणाली में कमी है और वास्तव में आमूलचूल परिवर्तन की जरूरत है। जे.ई.ई. प्रवेश परीक्षा में जो प्रश्न पूछे जाते हैं, वे +2 स्तर से बिल्कुल अलग होते हैं। यह अंतर ठीक करने की जरूरत है। जे.ई.ई. का स्वरूप अनूठा है और छात्रों से यह अपेक्षा करना कि वे बिना किसी गाइडेंस के अपने आप उसे पास कर लेंगे, यह अप्रासंगिक है। स्कूलों में तो उन्हें राज्य या केंद्रीय बोर्ड परीक्षाओं के सवाल हल करना ही सिखाया जाता है।

आई.आई.टी.-जे.ई.ई. के अभ्यर्थियों की एक और सीमा यह है कि कोई भी अभ्यर्थी लगातार वर्षों में केवल दो बार आई.आई.टी.-जे.ई.ई. एडवांस्ड परीक्षा में बैठ सकता है। हिंदी माध्यम स्कूलों से आनेवाले वंचित तबके के अभ्यर्थियों के लिए इससे बड़ी दिक्कत होती है। प्रश्नों के तौर-तरीकों को समझने में उन्हें समय लगता है और समस्या-समाधान तथा क्रिटिकल थिंकिंग पर एकाग्र करने और सहज होने के लिए उन्हें अकसर दो प्रयासों की जरूरत पड़ती है।

आनंद ने हाल ही में सरकार के साथ इस तरह का प्रोग्राम तैयार करने के लिए बात की है, जिसमें इंजीनियर बनना चाह रहे स्कूली बच्चों को ऑनलाइन सपोर्ट उपलब्ध कराया जा सके। इस तरह से उन्हें महँगी प्राइवेट कोचिंग पर पूरी तरह से निर्भर नहीं रहना पड़ेगा, जो कि बच्चों और उनके परिवारों पर आर्थिक बोझ ही होती है।

हर साल जब छात्र-छात्राओं का नया बैच आई.आई.टी. और अन्य संस्थाओं में प्रवेश करता है तो उनके ढेरों फोन आनंद के पास आते रहते हैं। सुपर 30 के छात्र-छात्राओं की एक सामान्य शिकायत यह है कि आई.आई.टी. वैसे नहीं होते जैसी उन्होंने कल्पना की थी या जैसा उन्हें होना चाहिए। जिस संस्थान में दाखिले के लिए वे दिन-रात एक कर देते हैं और सोते-जागते सिर्फ एक ही चीज का सपना देखते हैं, उसके बारे में उनकी अपेक्षाओं की कल्पना कीजिए। इस तरह के अभीष्ट संस्थान के लिए वे इतनी ज्यादा मेहनत करते हैं, वह वास्तव में उनकी अपेक्षाओं पर अकसर खरा नहीं उतरता।

इतने वर्षों में आनंद भी आई.आई.टी. के तौर-तरीके समझ गए हैं। अनेक छात्र-छात्राओं ने उनसे शिकायत की है कि वहाँ सीखना कोई नहीं चाहता और सब डिग्री मिलते ही मोटे व आकर्षक पैकेज हथियाने की दौड़ में रहते हैं। यहाँ तक कि अखबार भी प्लेसमेंट के दौरान मिलनेवाले बड़े-बड़े पैकेजों की सराहना करते रहते हैं। शोध परियोजनाओं और इनोवेशन को पर्याप्त कवरेज न दिया जाना सोच का विषय है।

नवाचार और रचनाशीलता की संस्कृति तो एकदम शुरू से प्रोत्साहित किए जाने की जरूरत है। छात्रों से यह अपेक्षा करना अनुचित होगा कि वे अचानक सीखने के तौर-तरीके बदल दें; जबकि पूरे जीवन भर में रट्टा मारते रहे हैं। वर्तमान प्रणाली में समस्या समाधान के कौशल बुनियादी तथ्यों को समझने और उन पर जोर देने की विभिन्न विधियों को प्रोत्साहित नहीं करता। बच्चे अधिकतर समय पाठ्य पुस्तकों में लिखी बातें और सैद्धांतिक पक्ष को शिक्षण गतिविधियों और खेलों के जरिए समझने के बजाय उन्हें याद करने में खर्च करते रहते हैं। जहाँ परीक्षा में लाए जानेवाले अंकों से छात्रों का भाग्य निर्धारित होता है और विजन, समझ तथा क्षमता जैसे समान रूप से महत्त्वपूर्ण कारक उपेक्षित रहते हों, वहाँ रचनाशीलता कोर्स की किताबों में पड़ी छटपटाती रहती है।

कैंब्रिज, हॉर्वर्ड और एम.आई.टी. के विश्वविद्यालय इसीलिए महान् हैं, क्योंकि वे दुनिया को समाधान और मौलिक विचार प्रदान करते हैं। आनंद महसूस करते हैं कि जब भी

सर्वश्रेष्ठ के साथ स्पर्धा करने की बात आती है तो हम कुछ पीछे रह जाते हैं और इसका कारण यह है कि यहाँ की प्रणाली में छात्र-छात्राओं को समस्या के क्यों और कैसे के प्रश्न करना नहीं सिखाया जाता। रामानुजन स्कूल में पढ़ाने के दौरान और सुपर 30 में कोचिंग देने के दौरान आनंद हर समाधान पर तर्क करने और वैकल्पिक समाधान निकालने की आदत विकसित करने की कोशिश करते हैं। आनंद की शिक्षण शैली इस बात का सजीव प्रमाण है कि आज की प्रणाली में विशेष शिक्षकों की जरूरत है, जो शुरू से ही केवल मान लेने के बजाय विश्लेषण करने की क्षमता विकसित करें। इस बारे में बहुत शोध हो चुका है, जिससे पता चलता है कि किस तरह से सारे बच्चे जिज्ञासु पैदा होते हैं; लेकिन बँधा-बँधाया ढर्रा और पाठ्यक्रम अकसर इस मौलिकता का दम घोंट देता है।

यही सब शोध के साथ भी है। गणितीय सिद्धांत में आनंद की शुरुआती रुचि ने उन्हें शोध करने को प्रेरित किया और उन्होंने ऐसे शिक्षक तलाशने की कोशिश की जो उन्हें विकसित करने में मदद करें; लेकिन उन्होंने पाया कि अगर यह प्रेरणा स्कूली स्तर से ही दी जाती तो उनके लिए ज्यादा आसानी होती। आज भी जो थोड़ी-बहुत परियोजनाएँ सामने आ भी रही हैं, वे अधिकतर विश्वविद्यालय स्तर पर स्नातकोत्तर, डॉक्टरेट और पोस्ट डॉक्टरेट के छात्र-छात्राएँ कर रहे हैं। आरंभिक अवस्था में ही शोध की भावना पैदा करने के प्रयासों से अधिक-से-अधिक छात्रों का इस क्षेत्र में आगे आना सुनिश्चित होगा, जो हर क्षेत्र में लीडरशिप और नवाचार का विकास करेंगे।

30 साल से कम उम्र के लोगों की आबादी भारत में दुनिया भर से ज्यादा है और यह आँकड़ा एक जरूरी बात—युवा, और इसलिए क्षमता की ओर इशारा करता है। यही क्षमता है, जिस पर आनंद सुपर 30 के लिए छात्र-छात्राओं का चयन करते समय ध्यान देते हैं और जो उन्हें रामानुजन स्कूल ऑफ मैथमेटिक्स के जरिए अधिक-से-अधिक लोगों को शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए प्रेरित करती है। भारत में बहुत बड़ी संख्या में मानव संसाधन उपलब्ध हैं, वहीं बड़े संस्थानों में प्रवेश के लिए स्पर्धा कर रहे छात्रों की संख्या भी यहाँ सबसे ज्यादा है। इसका मतलब यह है कि हर औसत व्यक्ति के लिए अवसर का स्तर कम है। हमारी शिक्षा-प्रणाली की समस्याओं को मिटाने के लिए आनंद कुमार जैसे अधिक-से-अधिक शिक्षक तैयार हो सकें, इसके लिए समाज, सरकार और खासकर आपको एक साथ काम करने की जरूरत है।

हालाँकि, हाल के वर्षों में उनकी कही बात केवल शांति कुटीर की छोटी सी कक्षा तक ही सीमित नहीं रहती, बल्कि बड़े स्तर पर सुनी जाती है; लेकिन दो दशकों की अथक मेहनत के बाद भी उनके पढ़ाने की भूख रत्ती भर भी कम नहीं हुई है। दुनिया भर में अपनी यात्राओं के बावजूद उनकी प्राथमिकता सुपर 30 और रामानुजन स्कूल के छात्र-छात्राएँ ही हैं, जहाँ वे सर्वाधिक उत्पादक साबित होते हैं। ब्लैकबोर्ड पर गणितीय सवालों को लिखना और छात्रों को उन्हें हल करने की चुनौती देना उनका सबसे पसंदीदा कार्य है। जब ये छात्र

अपने खुद के हल विकसित करते हैं तो उनकी आँखें खुशी से भर जाती हैं और उनके लिए यह सबसे बड़ी संतुष्टि होती है, और इसी तरह की संतुष्टि उन्हें अपने परिवार से मिलती है।

□

दिसंबर 2015 में एक दिन बड़े सुबह आनंद कुमार शांति कुटीर के बाहर खड़े थे। दिन शुरू होने से पहले उनके मन में कुछ विचार उमड़ रहे थे। क्षितिज में देखते हुए वे मन-ही-मन दिन के अध्यायों की तैयारी कर रहे थे। तभी उनका मोबाइल बज उठा। उन्होंने फोन देखा, कोई अनजान नंबर था। आनंद अपना नंबर जहाँ-तहाँ देते रहते हैं और दिन भर उनके पास अनेक चाही-अनचाही कॉल्स आती रहती हैं, जिनमें पत्रकारों से लेकर दाखिले की जानकारी चाहनेवाले लोग और उन्हें गेस्ट लेक्चर के लिए बुलानेवाले लोग शामिल होते हैं।

आनंद ने फोन उठाया। फोन एक पत्रकार का था, जो उनसे उन्हें हाल में जर्मन सरकार से मिले सम्मान के बारे में जानना चाहता था। उन्हें जर्मनी के सेक्सनी प्रांत में बुलाया गया था, जहाँ उच्च शिक्षा और शोध राज्य मंत्री इवा मारिया स्टेंज ने उन्हें उनके सराहनीय कार्य के लिए सम्मानित किया था। उन्होंने उस सम्मान के बारे में थोड़ी बात की और फोन वापस अपनी आगे की जेब में रखकर आँखें बंद कर लीं।

पीछे से उन्हें घर के अन्य लोगों के जागने और हलचल की आवाजें आ रही थीं। वे जानते थे कि उनका बेटा जगत् कुछ ही देर में अपनी माँ के पास से उठकर उन्हें ढूँढ़ता हुआ आ जाएगा।

आनंद का विवाह ॠतु से वर्ष 2008 में हुआ है जो आई.आई.टी. वाराणसी से स्नातक हैं। ॠतु एक सॉफ्टवेयर इंजीनियर के रूप में काम कर रही थीं; लेकिन आनंद से विवाह के बाद वे पूरी तरह से सुपर 30 में अपना योगदान देती हैं।

वर्ष 2010 में उन्हें एक बेटा हुआ और जल्द ही शांति कुटीर कक्षा ही नहीं रह गया और बच्चे की किलकारी से गूँजने लगा। जगत् कुमार केवल जयंती देवी और बाकी परिवार का ही नहीं, सुपर 30 के बच्चों के लिए भी आकर्षण का केंद्र बन गया और वे भी उस बच्चे के साथ खेलना और तनाव-मुक्त होना पसंद करने लगे।

आनंद को किसी ने नाम से पुकारा तो वे चौंक गए। चाय बन चुकी थी। आनंद सुपर 30 के भविष्य और उससे मिली प्रसिद्धि के बारे में सोच रहे थे, तभी उन्हें मुन्ना इशारा करके बुलाता दिखा। चिंतामग्न आनंद को वे सारी चुनौतियाँ याद आ गईं, जो उन्होंने पिछले वर्षों में झेली थीं। वे सोच रहे थे कि अगर उन्हें प्रणव, ॠतु, जयंती देवी और हाँ, मुन्ना जैसे लोगों का सहयोग न मिला होता तो आज सुपर 30 कुछ भी न होता।

आनंद अपने साधारण मकान में घुसे, जिसने इतना कुछ बदलाव देखा था। उन्हें याद आया कि उनके पिता राजेंद्र प्रसाद उनसे क्या अपेक्षाएँ कर रहे थे। उनसे जो अपेक्षाएँ की जा रही थीं, वे उनके बारे में सोच रहे थे। आनंद जहाँ भी जाते हैं, बड़ी संख्या में हजारों युवा उन्हें सुनने के लिए और शिक्षा के क्षेत्र में हो रही इस क्रांति का हिस्सा बनने के लिए आ जाते हैं।

कुछ लोगों को लगता है कि आनंद अब बहुत बड़े आदमी हो गए हैं और अकसर गरीब महिला अपने नौ साल के बच्चे को पढ़ाने की विनती करते उनके पास आ जाती है। कई बार ऐसा भी हुआ है, जब एक ऐसी महिला उनके पास मदद के लिए आई, जिसकी ससुरालवाले उसे दहेज के लिए परेशान करते थे। लगभग हर दिन कम-से-कम दस लोग तो अलग-अलग तरह की समस्याएँ लेकर आनंद के पास आते ही हैं—किसी का पति पीटता है, कोई अपने बच्चों को पढ़ाना चाहता है, किसी को झूठे मुकदमे में फँसा दिया गया है। सबको लगता है कि आनंद उनकी मदद कर सकते हैं। और आनंद कुछ मामलों में कोशिश करते भी हैं; लेकिन ज्यादा कुछ न कर पाने के लिए वे लज्जित भी महसूस करते हैं। लोगों की दयनीय सूरतें, मदद की आशा लिये आँखें उन्हें और मजबूर कर देती हैं। उन्हें लगता है कि सुपर 30 केवल एक छोटी सी शुरुआत है। वे देश और गरीबों के लिए बहुत कुछ करना चाहते हैं, ताकि वे एक दिन अपने पिता का कोट पहनने के काबिल हो जाएँ, जो अब भी हैंगर पर टँगा हुआ है।

□

छात्र के मुख से

नाम : अनूप राज (अनूप कुमार)
सुपर 30 बैच : 2010
संस्थान और विषय : बी. टेक., सिविल इंजीनियरिंग, आई.आई.टी., मुंबई
वर्तमान पद : सहसंस्थापक और सी.टी.ओ., पी.एस. टेककेयर

सुपर-30 का टेस्ट पास करने के बाद जल्द ही मेरा साक्षात्कार हुआ और मुझे छात्रावास में जगह मिल गई। मैं पूरे जीवन भर वह जगह नहीं भूल सकता। पढ़ाई के लिए वह एकदम सही जगह थी। मुझे नहीं लगता कि आई.आई.टी. समेत कोई अन्य स्कूल इस तरह का माहौल मुहैया करा सकता है—सफेद टाइल का फर्श, जिसे बाद में हमने ब्लू मार्कर इस्तेमाल कर-करके नीला कर डाला था।

वह जीवन का एक मोड़ था। हालाँकि, बिहार में मेरा ग्यारहवाँ स्थान आया था, लेकिन मुझे कुछ पता नहीं था कि मेरा जीवन कहाँ जाएगा। सुपर 30 मेरे लिए जीवन-रेखा बन गया। उस पल के बाद से मैंने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। अब देखते हैं, यह सब कहाँ तक बढ़ता है।

सभी छात्र-छात्राओं की अपनी-अपनी खूबियाँ और कमजोरियाँ थीं। हमने जी पास करने के लिए एक-दूसरे की मदद की। आनंद सर हम लोगों को अपार ऊर्जा से भर दिया करते थे। हम इसके सहारे चौदह घंटे लगातार पढ़ाई कर लेते थे।

इस अभ्यास ने मेरा जीवन बदल दिया। मैं पाठक बन गया। अब मैं हर बार तीन से चार किताबें पढ़ लेता हूँ; लेकिन अब उनका विषय मेरे बिजनेस से संबंधित होता है।

रिक्की और भोलू की अनूठी कहानी मुझे महसूस कराती थी कि मैं परीक्षा पास कर सकता हूँ। मेरे लिए संभव है। अब मुझे यह प्रेरणा देती है कि मैं अपनी पृष्ठभूमि की परवाह किए बिना कुछ भी कर सकता हूँ। अब आनंद सर को मार्गदर्शक, मित्र और अभिभावक के रूप में पाना मेरा सौभाग्य है। इसे शब्दों में बयान नहीं किया जा सकता।

सुपर 30 में सीखे ये सबक मुझे जीवन भर याद रहेंगे—‘कठिन समय में भी आपको अपने आप पर विश्वास करना सीखना होगा।’

संदर्भ सूची

1. ‘Obama’s Special Envoy Hails Super 30’. 9 August, 2010. *The Hindu* http://www.thehindu.com/news/national/other-states/obamas-special-envoy-hailssuper-30/article 559325.ece .

2. Mishra, Alok K.N.—‘Big B Gets Teaching Tips from Super 30’s Anand’. 31 July, 2011.*Times of India* . http://timesofindia.indiatimes.com/india/Big-B-gets-teaching-tips-from-Super-30s-Anand/articleshow/9433908.cms?referral=PM .

3. Sarin, Jitendra. ‘Government Staff, Politicos Must Send Their Kids to Govt. Schools: Allahabad HC’. 19 August, 2015. *Hindustan Times* . http://www.hindustantimes.com/india/govt-staff-politicos-must-sendkids-to-govt-schools-allahabad-hc/story-COWyikj8YXWbc0CQILw1bO.html .

4. ‘Grade F’. 15 January, 2015. *Indian Express* . http://indianexpress.com/article/opinion/editorials/grade-f/ .

5. Verma, Sanjeev Kumar. ‘Plea to Include IIT Counselling Fee in Loan’. 11 March, 2015. *Telegraph* . http://www.telegraphindia.com/1150311/jsp/bihar/story_7896.jsp .

6. ‘UP Daily Wager Is Happy Father As His Son Cracks IIT’. 21 June, 2015. Hindustan Times. http://www.hindustantimes.com/india/up-daily-wager-is-happy-father-ashis-sons-crack-iit-govt-waives-fee/storymAQIE57E1Fs3MSri1XWcWK.html .

□□□